Bharat BoudhIKS

खंड-13

भारतीय लोकशासन परंपरा

सनातन ज्ञान : युवा उत्थान

भारतीय ज्ञान प्रणाली आधारित प्रतियोगी परीक्षाओं (नेट और यूपीएससी) के लिए एक संक्षिप्त पुस्तक

सरस्वति नमस्तुभ्यं वरदे कामरूपिणि ।
विद्यारम्भं करिष्यामि सिद्धिर्भवतु मे सदा ॥

देवी सरस्वती को प्रणाम,
जो वर देने वाली और इच्छाओं को पूर्ण करने वाली हैं ।
हे देवी, जब मैं अपने अध्ययन की शुरुआत करूं,
कृपया मुझे हमेशा सही समझ की शक्ति दें ।

Salutations to Devi Saraswati,
the giver of boons and fulfiller of wishes.
O Devi, When I begin my studies,
please bestow on me the capacity of right understanding always

विद्या भारती
उच्च शिक्षा संस्थान
Vidya Bharati
Uchcha Shiksha Sansthan

H-107A, Sector-12, Noida, Gautam Buddha Nagar, (Uttar Pradesh), PIN – 201301
Telephone : 0120-4338616, Mobile: 9999694251

E-mail : vbheducation@gmail.com, contact@vbuss.org
Twitter/Facebook/Instagram : @VBUSSOrg

http://vbuss.org

Drafting Committee / Team

- **Dr. Meenakshi Sharma**
  ACBR, University of Delhi
- **Dr. Mansi Yuvendar Chaudhary**
  Rajdhani College, University of Delhi
- **Dr. Shobhita Singal**
  MLNC, University of Delhi
- **Dr. Deepak Kumar**
  DRC, University of Delhi
- **Ms. Prakshi Soni**
  University of Delhi
- **Mr. Jitender Kumar**
  University of Delhi
- **Ms. Kajal Sharma**
  University of Delhi
- **Ms. Geeta Chaudhary**
  University of Delhi
- **Mr. Pradeep K. Pandey**
  University of Delhi

भारतीय लोकशासन परंपरा

Bharat BoudhIKS

भारतीय ज्ञान प्रणाली आधारित प्रतियोगी परीक्षाओं (नेट और यूपीएससी) के लिए एक संक्षिप्त पुस्तक

विद्या भारती
उच्च शिक्षा संस्थान
सा विद्या या विमुक्तये

किताबवाले
नयी दिल्ली-110002

अस्वीकरण

यह पुस्तक प्राचीन भारतीय ज्ञान परंपराओं से संबंधित विभिन्न शास्त्रीय ग्रंथों, साहित्यिक स्रोतों और सार्वजनिक रूप से उपलब्ध सामग्रियों के अध्ययन एवं उनकी व्याख्या पर आधारित एक विद्वत्तापूर्ण कृति है। यद्यपि इसकी संरचना, विषयवस्तु या प्रवाह में कुछ तत्व पूर्ववर्ती कृतियों अथवा पारंपरिक साहित्य से मेल खा सकते हैं, किन्तु ये समानताएँ केवल संयोगवश हैं और विषय की प्रामाणिकता बनाए रखने के उद्देश्य से रखी गई हैं। हमने यह सुनिश्चित करने का हर संभव प्रयास किया है कि प्रस्तुत सामग्री तथ्यपरक, जानकारीपूर्ण और मूल स्रोतों के प्रति पूर्ण सम्मानभाव से युक्त हो। इस कृति में व्यक्तिगत अनुसंधान, सृजनात्मकता और शैक्षणिक परिश्रम के परिणामस्वरूप नवीन विश्लेषण, अद्यतन व्याख्याएँ, नए विषय, चित्रण और संदर्भ विस्तार सम्मिलित किए गए हैं। मौजूदा स्रोतों से प्राप्त सभी प्रेरणाएँ और संदर्भ पूर्ण सद्भावना एवं शैक्षणिक/ज्ञान-वितरण के उद्देश्य से प्रयोग किए गए हैं। इस पुस्तक का उद्देश्य किसी भी प्रकार के कॉपीराइट या बौद्धिक संपदा अधिकारों का उल्लंघन करना नहीं है। यदि अनजाने में किसी सामग्री से ऐसे किसी अधिकार का अतिक्रमण हुआ हो, तो सूचित किए जाने पर सम्पादक आवश्यक संशोधन या यथोचित स्वीकृति देने को तत्पर है।

© विद्या भारती उच्च शिक्षा न्यास, दिल्ली प्रांत

शीर्षक : भारतीय लोकशासन परंपरा

सम्पादक : प्रो. राज किशोर शर्मा, डॉ. दीपक कुमार

संस्करण : 2025

ISBN : 978-93-49531-80-2

मूल्य : 170/-

प्रकाशक:
किताबवाले
नई दिल्ली-110002

सहयोग:
विद्या भारती
उच्च शिक्षा संस्थान, नोएडा

मुद्रक:
जी.के. फाईन आर्ट प्रेस
पटपड़ गंज, नई दिल्ली

शुभकामना संदेश

प्रिय मित्रों,

यह मेरे लिए अत्यंत हर्ष और गौरव का विषय है, साथ ही एक गहरा उत्तरदायित्व भी, कि मैं आपके समक्ष **'भारत बौद्धिक्स'** परियोजना को प्रस्तुत कर रहा हूँ। **भारत बौद्धिक्स विद्या भारती उच्च शिक्षा संस्थान** द्वारा प्रारंभ किया गया एक राष्ट्रीय शैक्षिक अभियान है, जिसका मुख्य उद्देश्य हमारे युवाओं को गुणात्मक, सर्वांगीण और समग्र विकास की शिक्षा के साथ-साथ उनके मन और मस्तिष्क में भारत की बौद्धिक और सांस्कृतिक चेतना को पुनर्जीवित करना है।

जैसा कि हम सभी जानते हैं, विज्ञान, दर्शन, शासन, आरोग्य और कला जैसे अनेक क्षेत्रों में भारतीय ज्ञान परंपराएँ हजारों वर्षों से मानवता का मार्गदर्शन करती रही हैं। आज जब पूरी दुनिया एक संतुलित, नैतिक और समावेशी विकास मॉडल की खोज में है, ऐसे समय में हमारे प्राचीन ग्रंथ और विचार केवल इतिहास की धरोहर नहीं रह गए हैं, बल्कि वे प्रेरणा और नवाचार के जीवंत स्रोत बनकर सामने आ रहे हैं। भारत बौद्धिक्स का प्रयास है कि इस अमूल्य विरासत को आज के विद्यार्थियों के लिए सुलभ, समसामयिक और सार्थक रूप में प्रस्तुत किया जाए।

हमारे विशेषज्ञों द्वारा तैयार की गई **21 पुस्तकों की एक विशेष श्रृंखला,** इस परियोजना का मूल आकर्षण है। जिसे तीन प्रमुख क्षेत्रों में वर्गीकृत किया गया है:

1. **विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी**: इस खंड में वैदिक गणित, खगोलशास्त्र, आयुर्वेद, धातु विज्ञान, मंदिर वास्तुकला और पारंपरिक पर्यावरण ज्ञान जैसे विषयों के माध्यम से भारत की वैज्ञानिक परंपराओं को उजागर किया गया है।
2. **कला एवं मानविकी**: यह खंड नाट्यशास्त्र, शास्त्रीय भाषाओं, संगीत, साहित्यिक परंपराओं और प्रदर्शन कलाओं के माध्यम से भारत की सांस्कृतिक समृद्धि और सौंदर्यबोध को प्रतिबिंबित करता है।

3. **समाजशास्त्र एवं अर्थनीति**: इसमें राजधर्म, अर्थशास्त्र, कृषि, ग्रामीण उद्योग, और शासन-प्रणाली जैसे विषयों को शामिल किया गया है, जो संतुलित और नैतिक समाज निर्माण की दिशा में मार्गदर्शन प्रदान करते हैं।

इन पुस्तकों के माध्यम से युवाओं की सक्रिय भागीदारी सुनिश्चित करने हेतु हम **23 जनवरी 2026**, नेताजी **सुभाष चंद्र बोस जी की जयंती** के अवसर पर, एक **राष्ट्रीय परीक्षा** का आयोजन कर रहे हैं। यह परीक्षा पूरे देश के स्नातक एवं स्नातकोत्तर विद्यार्थियों के लिए खुली होगी। इस परीक्षा का उद्देश्य केवल ज्ञान का मूल्यांकन करना नहीं है, बल्कि जिज्ञासा जगाना, आत्मचिंतन को प्रेरित करना, और भारतीय सभ्यता के गौरव के प्रति गर्व की भावना को जागृत करना है।

परीक्षा में उत्कृष्ट प्रदर्शन करने वाले विद्यार्थियों को **राष्ट्रीय भारत बौद्धिक्स कॉन्क्लेव** में आमंत्रित किया जाएगा। यह एक ऐसा मंच होगा जहाँ वे अपने विचार साझा करेंगे, मार्गदर्शकों से संवाद करेंगे और **भारतीय कला एवं समाज** भारतीय ज्ञान प्रणाली के जीवंत अनुभव से जुड़ सकेंगे। **भारत बौद्धिक्स** मात्र एक शैक्षिक कार्यक्रम नहीं, बल्कि यह एक **यात्रा है: ज्ञान से बोध की ओर**। यह हमें हमारे मूल से जुड़ने, अपने भविष्य की पुनर्कल्पना करने और भारत की आत्मा को पुनः समझने का अवसर देता है।

मैं देशभर के सभी छात्रों, शिक्षकों और शैक्षणिक संस्थानों से हार्दिक आग्रह करता हूँ कि वे इस पुनराविष्कार और परिवर्तन की यात्रा में हमारे सहभागी बनें। आइए, हम मिलकर एक ऐसी पीढ़ी के निर्माण में सहायक बनें, जो बौद्धिक रूप से जागरूक, संस्कृति के प्रति संवेदनशील और वैश्विक दृष्टिकोण से उत्तरदायी हो।

सादर, सस्नेह

प्रो. कैलाश सी. शर्मा
अध्यक्ष, विद्या भारती उच्च शिक्षा संस्थान
अध्यक्ष, हरियाणा राज्य उच्च शिक्षा परिषद
पूर्व कुलपति, कुरुक्षेत्र विश्वविद्यालय, कुरुक्षेत्र

विषय सूची

प्रस्तावना 9
विद्या भारती उच्च शिक्षा संस्थान 11
1. भूमिका 13
2. मनुष्यत्व और श्रेष्ठता 14
3. मनुष्य का उद्भव और विकास 15
4. परिवार और कुटुम्ब 17
5. संस्कार और मनुष्य-निर्माण 18
6. लोक और वर्ण व्यवस्था: भारतीय समाज की परंपरागत संरचना 26
7. लोक-राष्ट्र का सिद्धांत प्राचीन भारत में 33
अनुशंसित पठन सामग्री 36
बहु विकल्पीय प्रश्न 37
उत्तर-दर्शिका 56

"The history of India for many centuries had been happier, less fierce, and more dreamlike than any other history. In these favorable conditions, they built a character -meditative and peaceful and -a nation of philosophers such as could nowhere have existed except in India."

Source: The Outline of History by H. G. Wells

...

"In Indian wisdom, tolerance is not simply a matter of policy but an article of faith."

Source: Encyclopaedia of Hinduism-by Sunil Sehgal

...

H.G. Wells
(1866-1946)

Eminent English prolific novelist, journalist, sociologist and philosopher, who was fluent in many genres. His early specialisation was in Biology, and his thinking was woven mainly around a Darwinian context. Wells is best known for his science fictions, and the most noted works include The Time Machine, The Island of Doctor Moreau, The Invisible Man and The War of the Worlds. He was nominated for the Nobel Prize in Literature four times.

प्रस्तावना

भारतीय लोक व्यवस्थाएँ केवल एक ऐतिहासिक सामाजिक संरचना का अध्ययन नहीं, बल्कि भारतीय चिंतन की उस गहराई को दर्शाती हैं, जो समाज, व्यक्ति और राज्य के बीच एक संतुलित, नैतिक और धर्माधारित संबंध स्थापित करने की प्रेरणा देती है। यह ग्रंथ भारतीय जीवन-दर्शन की उस परंपरा का प्रतिनिधित्व करता है जिसमें व्यक्ति को केवल एक भौतिक अस्तित्व नहीं, बल्कि एक आत्मिक, मानसिक और सामाजिक उत्तरदायित्व से युक्त प्राणी माना गया है। मनुष्य की श्रेष्ठता उसके बाह्य बल में नहीं, बल्कि उसके विवेक, आत्मसंयम और सामाजिक चेतना में है। भारतीय विचारधारा में वर्ण व्यवस्था का उद्देश्य कर्तव्यों और गुणों के आधार पर समाज का संतुलित विभाजन था, जबकि लोक व्यवस्था में जन-कल्याण, समानता और न्याय पर बल दिया गया। यह ग्रंथ संस्कारों की श्रृंखला के माध्यम से व्यक्ति के मानसिक और नैतिक विकास का मार्ग प्रशस्त करता है, जिससे वह समाज और राष्ट्र के निर्माण में सक्रिय भूमिका निभा सके। पुस्तक में वर्णित विषय - जैसे कि भारतीय परिवार व्यवस्था, लोक-राष्ट्र की अवधारणा, जाति व्यवस्था और उसका ऐतिहासिक स्वरूप, महापुरुषों द्वारा किए गए सामाजिक सुधार - इन सभी से यह स्पष्ट होता है कि भारतीय समाज व्यवस्था की जड़ें केवल रीति-रिवाजों में नहीं, बल्कि गहन दार्शनिक विचारधारा और मानवता की मूलभूत भावनाओं में निहित हैं। यह ग्रंथ विशेष रूप से उन पाठकों के लिए उपयोगी है जो भारत के सामाजिक ढाँचे को उसकी मूल भावना के साथ समझना चाहते हैं। यह न केवल अतीत को उद्घाटित करता है, बल्कि वर्तमान और भविष्य की सामाजिक दिशा को भी आलोकित करता है।

"India- the land of Vedas, the remarkable works contain not only religious ideas for a perfect life, but also facts which science has proved true.

Electricity, radium, electronics, airship, all are known to the seers who founded the Vedas."

Source: Indian systems of psychotherapy by Prakash Veereshwar.

...

Ella Wheeler Wilcox
(1850-1919)

Prolific American mystic poetess and journalist. She was instrumental in the establishment of the Rosicrucian Movement in twentieth-century America and is best known for her 'Poems and Passion'

विद्या भारती उच्च शिक्षा संस्थान

विद्या भारती उच्च शिक्षा संस्थान (VBUSS) भारतीय परंपराओं में निहित एक समग्र, मूल्य-आधारित ढांचे के अंतर्गत शैक्षणिक उत्कृष्टता, चरित्र निर्माण और राष्ट्र-निर्माण पर बल देते हुए गुणवत्तापूर्ण उच्च शिक्षा प्रदान करने के लिए प्रतिबद्ध है । **"सा विद्या या विमुक्तये"** - अर्थात् "वह ज्ञान जो मुक्त करता है" - इस प्रेरणादायक ध्येय वाक्य से संचालित होकर, VBUSS ऐसी पीढ़ी के निर्माण का संकल्प करता है जो न केवल शैक्षणिक दृष्टि से दक्ष हो, अपितु सामाजिक रूप से उत्तरदायी एवं आध्यात्मिक रूप से जागरूक भी हो ।

संस्थान उच्च शिक्षा के मूल तत्वों के रूप में समालोचनात्मक चिन्तन, वैज्ञानिक दृष्टिकोण, नैतिक जीवन और गहन सांस्कृतिक समझ को प्रमुखता प्रदान करता है। सम्पूर्ण भारतवर्ष में विस्तृत शैक्षणिक तंत्र के माध्यम से VBUSS ने उल्लेखनीय प्रभाव डाला है। यह संस्था अनेक शिक्षक प्रशिक्षण महाविद्यालयों, डिग्री संस्थानों तथा व्यावसायिक केन्द्रों का संचालन कर, देश में उच्च शिक्षा की गुणवत्ता तथा उपलब्धता को सुदृढ़ करने का कार्य कर रही है।

उपलब्धियों की दृष्टि से भी VBUSS ने उच्च शिक्षा के क्षेत्र में प्रशंसनीय प्रगति की है। संस्थान ने सम्पूर्ण भारत में महाविद्यालयों और विश्वविद्यालयों का एक सुदृढ़ तंत्र स्थापित किया है, जो विज्ञान, प्रौद्योगिकी, कला एवं सामाजिक विज्ञान जैसे विविध क्षेत्रों में शैक्षणिक मार्गदर्शन प्रदान करता है। कठोर पाठ्यक्रमों और अनुसंधान पहलों के माध्यम से निरंतर शैक्षणिक उत्कृष्टता को सुनिश्चित करते हुए, इसने शिक्षा क्षेत्र में विशिष्ट योगदान हेतु मान्यता प्राप्त की है।

विद्या भारती ने वंचित समुदायों को शिक्षा उपलब्ध कराकर सामाजिक समावेशन को बढ़ावा देने में भी सक्रिय भूमिका निभाई है, जिससे गुणवत्तापूर्ण शिक्षा की पहुँच का अंतर कम हुआ है।

अपने सतत प्रयासों द्वारा VBUSS भारत के भविष्य को कुशल, ज्ञानसम्पन्न एवं नैतिक नेतृत्व प्रदान कर रहा है। आधुनिक शैक्षणिक विषयों का प्राचीन भारतीय ज्ञान से समन्वय कर, VBUSS राष्ट्र के प्रति समर्पित, जिम्मेदार और जागरूक नागरिकों के निर्माण में एक महत्वपूर्ण भूमिका निभा रहा है।

VBUSS प्राचीन भारतीय ज्ञान को पुनः जागृत कर समकालीन शिक्षा प्रणाली में एकीकृत करने के राष्ट्रीय आंदोलन में अग्रदूत के रूप में प्रतिष्ठित है। प्रस्तुत पुस्तक इस महान अभियान में एक विनम्र योगदान है। यह भारतीय ज्ञान परंपरा के प्रमुख विचारों, दार्शनिक अवधारणाओं एवं विभिन्न शास्त्रों को एक सुलभ एवं विचारोत्तेजक स्वरूप में संकलित करता है।

भारतीय लोक शासन परंपरा

भूमिका

मनुष्य की श्रेष्ठता पर भारतीय दृष्टिकोण एक गहरे दार्शनिक विचार का परिणाम है, जो न केवल उसकी भौतिक अवस्था बल्कि उसकी मानसिक और आत्मिक क्षमता पर आधारित है। भारतीय संस्कृतियों में मनुष्य को "सर्वश्रेष्ठ प्राणी" माना गया है, और इसका आधार उसकी अद्वितीय मानसिक और चिंतनशील क्षमताओं में निहित है।

Source: https://spiritualworld.co.in

महाभारत के शान्तिपर्व (299/20) में यह कहा गया है, **"न हि मानुषात् श्रेष्ठतरं हि किंचित्"**, जिसका अर्थ है कि मनुष्य इस सृष्टि का सबसे श्रेष्ठ प्राणी है। भारतीय दार्शनिक दृष्टिकोण में, मनुष्य की श्रेष्ठता का मूल कारण उसकी सोचने और समझने की क्षमता है। इस विचार के अनुसार, मनुष्य केवल भौतिक जगत के भोग में लिप्त नहीं रहता, बल्कि अपने कर्मों और मानसिक क्षमता द्वारा अपने जीवन को उन्नत और श्रेष्ठ बनाने का प्रयास करता है।

ऋषि अरविंद ने इस विषय पर महत्वपूर्ण विचार प्रस्तुत किए। उनके अनुसार, मनुष्य स्वभाव से **मनोमय प्राणी** है, जिसका अर्थ है कि उसका अस्तित्व केवल भौतिक या जैविक नहीं है, बल्कि मानसिक और आत्मिक भी है। वे यह भी कहते हैं कि मनुष्य का उच्चतम रूप वह है जब वह अपने वास्तविक स्वरूप के अधिक निकट होता है (योग समन्वय। यह मानसिक रूप से उन्नत और आत्म-साक्षात्कार की स्थिति है, जो उसे अन्य जीवों से अलग करती है।

भारतीय दृष्टिकोण में मनुष्य को **कर्मयोनि** माना गया है, जबकि अन्य प्राणियों को **भोगयोनि** कहा गया है। इसका अर्थ है कि मनुष्य केवल भोग और उपभोग के लिए पृथ्वी पर नहीं आया है, बल्कि उसे अपने कर्मों द्वारा आत्म-निर्माण और आत्म-साक्षात्कार की दिशा में अग्रसर होना है। मनुष्य की यह **कर्म** की विशेषता उसे अन्य प्राणियों से अलग करती है। उदाहरण के लिए, अन्य प्राणी अपनी प्राकृतिक प्रवृत्तियों के अनुसार कार्य करते हैं, जैसे कि भूख लगने पर बिना किसी चयन के जो सामने हो, उसे खा लेना। लेकिन मनुष्य की स्थिति अलग है। वह अपनी प्राकृतिक इच्छाओं और प्रवृत्तियों को नियंत्रित करने की क्षमता रखता है। उदाहरण स्वरूप, वह अपने आहार, पानी और अन्य आवश्यकताओं के लिए नियम बनाता है कि कौन सा भोजन योग्य है और कौन सा नहीं, क्या पीना चाहिए और क्या नहीं।

मनुष्यत्व और श्रेष्ठता

मनुष्य की यह विशेषता ही **"मनुष्यत्व"** और उसकी **"श्रेष्ठता"** का प्रतीक है। उसकी यह क्षमता उसे अन्य प्राणियों से ऊँचा उठाती है, क्योंकि वह भोग और जीवन-निर्वाह से कहीं अधिक कुछ है। मनुष्य का अस्तित्व केवल भौतिक जगत से जुड़ा हुआ नहीं है, बल्कि वह उससे कहीं अधिक विलक्षण है।

मनुष्य की यह विशेषता उसे अपने जीवन के उद्देश्यों को निर्धारित करने की

स्वतंत्रता देती है, और उसे अपने कर्मों के प्रति उत्तरदायी बनाती है। यही कारण है कि भारतीय दर्शन में मनुष्य को एक **"कर्मयोगी"** के रूप में देखा जाता है, जो केवल अपने लिए नहीं, बल्कि समाज और संसार के लिए भी कार्य करता है।

भारतीय लोक व्यवस्था में व्यक्ति की भूमिका केवल भोग और उपभोग की नहीं, बल्कि वह समाज और राष्ट्र के निर्माण में भी योगदान करता है। यह व्यवस्था व्यक्तित्व के विकास, परिवार की भूमिका, और सामाजिक अनुशासन के द्वारा एक सामूहिक लक्ष्य की ओर अग्रसर होती है। मनुष्य का मुख्य उद्देश्य केवल अपने जीवन की भौतिक आवश्यकताओं को पूरा करना नहीं है, बल्कि वह अपनी मानसिक, आत्मिक और आध्यात्मिक क्षमता को जाग्रत करके आत्म-साक्षात्कार की दिशा में अग्रसर होता है। यही भारतीय लोक व्यवस्थाओं का मर्म है, जो उसे एक उच्चतम प्राणी बनाता है, और यही उसकी असली श्रेष्ठता का कारण है।

मनुष्य का उद्भव और विकास

मनुष्य के उद्भव और विकास पर चिंतन भारतीय सोच की एक विशिष्टता है, जिसका आधार भारतीयों की सृष्टि और मानवता से जुड़ी समझ में निहित है। भारतीय विद्वानों

का मानना था कि मनुष्य अपनी मौजूदा रूप में उत्पन्न हुआ और आरंभिक काल में उसने धर्म और नैतिकता के साथ जीवन बिताया। जैसे-जैसे उसकी धार्मिकता में कमी आई, वह पशुता की ओर बढ़ने लगा। इसके विपरीत, पश्चिमी यूरोपीय विचारक जो स्वयं को वैज्ञानिक मानते हैं, यह मानते हैं कि मनुष्य पहले एक जंगली पशु था, जो धीरे-धीरे विकास की प्रक्रिया से मनुष्य बना। उनके अनुसार, यह विकास उसकी प्राकृतिक आवश्यकताओं और उन्हें पूरा करने के प्रयासों के कारण हुआ।

आधुनिक विकासवाद के अनुसार, पहले शाकाहारी बंदर जब मनुष्य के रूप में परिवर्तित हुए, तो उन्होंने मांसाहार की ओर रुख किया। "हिस्ट्री ऑफ फूड" में रिए टन्नाहिल ने लिखा है कि लगभग 40 लाख से 1 करोड़ वर्ष पहले, पृथ्वी की प्लेटों में परिवर्तन के कारण जलवायु में बदलाव आया। उष्णकटिबंधीय इलाकों से ठंडे प्रदेश बनने लगे, जंगल कम हो गए और वनस्पतियाँ मौसम पर निर्भर होने लगीं। फल, जो पहले बंदरों को पेड़ों से मिलते थे, अब कम होने लगे, जिससे वे मैदानों में घूमने लगे। यहाँ उन्हें कंदमूल, बीज और मांसाहारी जीव-जंतु जैसे छिपकलियाँ, साही, कछुए, गिलहरी, चूहे, कीड़े, और उनके अंडे मिले। यह विकास के प्रारंभ की स्थिति थी, जिसने आगे चलकर मानव इतिहास को आकार दिया। इससे स्पष्ट होता है कि भारतीय चिंतन जहाँ मानव विकास को प्राकृतिक आवश्यकताओं को संतुलित रूप से समझने और नियंत्रित करने के रूप में देखता है, वहीं यूरोपीय विचारधारा इसे अपनी मूल प्रकृति को छोड़ने और आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए बदलाव के रूप में मानती है। यह अंतर केवल वैज्ञानिक दृष्टिकोण से नहीं, बल्कि जीवन के लक्ष्यों और स्वभाव के संदर्भ में भी है। यूरोपीय और नवयूरोपीय देशों में लोग अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति को ही प्राथमिक लक्ष्य मानते हैं, चाहे इसके लिए पृथ्वी का विनाश क्यों न हो जाए। इसके विपरीत, भारतीय अवधारणाएँ प्रकृति और सभी जीवों की रक्षा करते हुए मानव आवश्यकताओं की पूर्ति करने का समर्थन करती हैं।

इस मौलिक अंतर के कारण ही दोनों विचारधाराओं के विकास के मानदंड परस्पर विपरीत रहे हैं। यूरोप में व्यक्ति को एक संसाधन के रूप में देखा जाता है, जबकि भारतीय चिंतन उसे एक चेतनाशक्ति के रूप में देखता है। भारतीय दृष्टिकोण मनुष्य को आत्मा से जोड़कर देखता है, जबकि यूरोपीय वैज्ञानिक किसी सजीव और निर्जीव के बीच भेद करते हुए आत्मा को अस्वीकार करते हैं। उनका मानना है कि मनुष्य अमीबा जैसे कोशिकाओं से बना है, और कोशिकाएँ रासायनिक प्रतिक्रियाओं का परिणाम हैं।

परिवार और कुटुम्ब

भारत में परिवार संस्था को एक विशेष स्थान प्राप्त है, और यह भारतीय संस्कृति की एक अनूठी विशेषता मानी जाती है। यहां परिवार का भाव इतना व्यापक और गहरा है कि उसका विस्तार सिर्फ कुटुम्ब तक सीमित नहीं रहता, बल्कि वह संपूर्ण पृथ्वी तक फैल जाता है। इसके विपरीत, पश्चिमी दुनिया, विशेषकर यूरोप, में परिवार को एक संस्था के रूप में देखा गया और इसे एक व्यक्तिगत सत्ता का प्रतीक माना गया। यूरोपीय विचारधारा में कुटुम्ब या आत्मीय रिश्तों जैसा कोई भावनात्मक संबंध कभी विकसित नहीं हो पाया।

भारत में परिवार का आधार भावनाओं और संबंधों पर आधारित है, जबकि पश्चिम में इसे एक औपचारिक संस्था के रूप में देखा जाता है। यहां माता-पिता कोई सत्ता नहीं होते, बल्कि उनका मातृत्व और पितृत्व एक भावनात्मक बंधन है। इस भावनात्मक संबंध के कारण ही परिवार का अस्तित्व होता है और यह परिवार भाव ही मनुष्य को पशु से ऊपर उठाता है। जब परिवार बनता है तो स्त्री केवल स्त्री नहीं रहती और पुरुष केवल पुरुष नहीं रहता। स्त्री माँ, बहन, बेटी, मामी, मौसी, चाची, फुआ, दादी, नानी जैसी विविध भूमिकाएँ ग्रहण करती है, जबकि पुरुष पिता, भाई, बेटा, मामा, मौसा, चाचा, फूफा, दादा, नाना आदि बन जाता है।

इसका अर्थ यह है कि परिवार में स्त्री-पुरुष अपनी व्यक्तिगत पहचान खोकर नए रूप में ढल जाते हैं। यह रूप केवल भावनात्मक होता है, और यह वास्तविक जीवन में अधिक सुंदर और प्रभावशाली होता है। पश्चिम में इस प्रकार का परिवार का स्वरूप कभी विकसित नहीं हुआ। क्योंकि वहां विवाह को एक कानूनी अनुबंध के रूप में देखा जाता था, इसलिए परिवार अक्सर संसाधनों पर कब्जा जमाने की मानसिकता का प्रतीक बनकर रह गया।

संस्कार और मनुष्य-निर्माण

भारतीय संस्कृति में संस्कारों का अत्यधिक महत्व है, और वे जीवन के प्रत्येक चरण में व्यक्ति को शुद्ध और सकारात्मक बनाने की प्रक्रिया को समझाते हैं। वेदों में "मनुर्भवा" का आदेश दिया गया है, जिसका अर्थ है कि हर व्यक्ति को श्रेष्ठ, धर्मशील और संस्कारित मनुष्य के रूप में जन्म लेना चाहिए। इस आदेश को साकार करने के लिए भारतीय मनीषियों ने संस्कारों का विधान किया, जो जीवन की प्रत्येक अवस्था में व्यक्ति के आत्म-विकास और उसकी सामाजिक, धार्मिक जिम्मेदारियों को संतुलित करते हैं। संस्कारों की यह प्रणाली भारत की एक अद्वितीय विशेषता है, जो अन्य देशों या समाजों में नहीं पाई जाती।

https://blog.dharmikvibes.com

भारतीय संस्कारों की व्यवस्था में कुल 16 संस्कार माने गए हैं, जो

जीवन के विभिन्न चरणों में व्यक्ति के शुद्धिकरण और उसके चरित्र निर्माण के लिए अनिवार्य होते हैं। कुछ पुराने ग्रंथों में इन संस्कारों की संख्या 24 भी बताई गई है, लेकिन अधिकांश स्थानों पर 16 संस्कारों को ही माना जाता है। ये संस्कार व्यक्ति के जन्म से लेकर मृत्यु तक के प्रत्येक महत्वपूर्ण चरण को संस्कारित करने का कार्य करते हैं।

1. गर्भाधान (Garbhaadhaan)

गर्भाधान संस्कार का उद्देश्य संतान की शुभ और स्वस्थ उत्पत्ति के लिए एक पवित्र वातावरण बनाना है। यह संस्कार संतान के जन्म से पहले किया जाता है, जब दंपति संतान उत्पत्ति की योजना बनाते हैं। यह संस्कार एक धार्मिक, मानसिक और शारीरिक दृष्टिकोण से बहुत महत्वपूर्ण माना जाता है। गर्भाधान के दौरान विशेष मंत्रों का उच्चारण किया जाता है, जो शिशु के विकास के लिए शुभ होते हैं। संस्कार का यह उद्देश्य केवल संतान की उत्पत्ति नहीं, बल्कि उसका शारीरिक, मानसिक और आध्यात्मिक विकास सुनिश्चित करना होता है। इसके द्वारा माता-पिता को यह समझाया जाता है कि वे केवल संतान के जन्म के जिम्मेदार नहीं होते, बल्कि उसका सही दिशा में पालन-पोषण करना भी उनका धर्म है। इस संस्कार का गहरा संबंध भारतीय दर्शन और धार्मिक विचारधारा से है, जहां जीवन की उत्पत्ति को ईश्वर की कृपा और उसकी योजना से जोड़कर देखा जाता है। इसे एक दिव्य प्रक्रिया माना जाता है, जो केवल शारीरिक नहीं बल्कि मानसिक और आत्मिक शुद्धता की आवश्यकता भी बताता है। यह संस्कार संतान के जीवन में सकारात्मक बदलाव और ऊर्जावान शुरुआत की उम्मीदों को बल देता है।

2. पुंसवन (Pumsavan)

पुंसवन संस्कार का उद्देश्य गर्भस्थ शिशु के शारीरिक और मानसिक स्वास्थ्य को बनाए रखना है। यह संस्कार गर्भावस्था के दूसरे या तीसरे महीने में किया जाता है, जब गर्भ में पल रहे शिशु की शारीरिक संरचना और विकास की स्थिति स्थिर हो जाती है। इस संस्कार के दौरान महिला को विशेष आशीर्वाद और आहार पर ध्यान केंद्रित करने के लिए निर्देश दिए जाते हैं। इसके माध्यम से माता-पिता की भावना होती है कि वे शिशु के स्वास्थ्य के प्रति पूरी तरह जागरूक हैं और उसे अच्छे स्वास्थ्य की दिशा में प्रेरित करना चाहते हैं। इस संस्कार में विशेष मंत्रों का उच्चारण किया जाता है जो शिशु के शारीरिक और मानसिक स्वास्थ्य के लिए लाभकारी माने जाते हैं। इसके साथ-साथ यह संस्कार माता-पिता को यह समझाता है कि गर्भावस्था में महिला के मानसिक और

शारीरिक स्वास्थ्य का सीधा असर शिशु पर पड़ता है। यह संस्कार पारिवारिक जीवन में एक सकारात्मक ऊर्जा का संचार करता है, जिससे परिवार में प्रेम और सहयोग बढ़ता है। इसके द्वारा संतान की उत्पत्ति को लेकर उम्मीद और विश्वास भी बढ़ता है।

3. सीमंतोन्नयन (Seemantonayan)

सीमंतोन्नयन संस्कार गर्भवती महिला के लिए एक महत्वपूर्ण धार्मिक और शारीरिक संस्कार होता है। यह संस्कार गर्भावस्था के अंतिम चरणों में किया जाता है, जब महिला की शारीरिक और मानसिक स्थिति में परिवर्तन होता है। यह संस्कार महिला के स्वास्थ्य और गर्भस्थ शिशु की सुरक्षा के लिए किया जाता है। इसका मुख्य उद्देश्य शिशु के लिए एक सुरक्षित और आरामदायक वातावरण सुनिश्चित करना है। सीमंतोन्नयन संस्कार के दौरान विशेष मंत्रों का उच्चारण किया जाता है और महिला को आशीर्वाद दिया जाता है। इसके माध्यम से शिशु की सुरक्षा, स्वास्थ्य और मानसिक शांति की कामना की जाती है। इस संस्कार में महिला को विशेष रूप से पवित्रता और मानसिक शांति की आवश्यकता होती है, ताकि शिशु का मानसिक और शारीरिक विकास सही तरीके से हो सके। यह संस्कार भारतीय संस्कृति में महिलाओं के लिए एक सम्मानजनक और पवित्र स्थान को सुनिश्चित करता है और उसे मातृत्व के प्रति जिम्मेदार बना देता है। साथ ही, यह संस्कार पारिवारिक जीवन में संतान के लिए शुभकामनाओं और आशीर्वाद का प्रतीक होता है।

4. जातकर्म (Jatakarma)

जातकर्म संस्कार शिशु के जन्म के बाद किया जाता है, जिसमें शिशु का स्वागत और उसका शुद्धिकरण किया जाता है। इस संस्कार का मुख्य उद्देश्य शिशु के जीवन में पहली बार धार्मिक और सामाजिक रूप से प्रवेश करना होता है। इसे शिशु की जीवन यात्रा की शुरुआत के रूप में माना जाता है। जातकर्म संस्कार के दौरान शिशु का मुंह एक विशेष पदार्थ से छुआ जाता है, और उसे जीवन के महत्व के बारे में बताया जाता है। यह संस्कार शिशु को उसके परिवार और समाज से जोड़ने का कार्य करता है। इसमें माता-पिता और परिवार के सदस्य शिशु के जीवन में शुभकामनाओं और आशीर्वाद का समर्पण करते हैं। यह संस्कार शिशु के शरीर की शुद्धि के लिए होता है और उसे पूरी तरह से धार्मिक, सामाजिक और शारीरिक दृष्टिकोण से पवित्र करता है। जातकर्म के दौरान परिवार के सदस्य और रिश्तेदार शिशु के जन्म पर खुशी और प्रेम व्यक्त करते हैं। इसके माध्यम से

शिशु को एक समाजिक पहचान मिलती है और उसकी शुरुआत धार्मिक दृष्टिकोण से होती है।

5. निष्क्रमण (Nishkraman)

निष्क्रमण संस्कार तब किया जाता है जब शिशु को घर से बाहर ले जाया जाता है। यह संस्कार शिशु को पहली बार बाहरी वातावरण से परिचित कराता है। यह संस्कार विशेष रूप से शिशु के जीवन में एक नए अनुभव की शुरुआत का प्रतीक होता है, जहां वह बाहर की दुनिया से मिलने के लिए तैयार होता है। निष्क्रमण संस्कार में शिशु को शुद्ध और पवित्र वातावरण में लाया जाता है, ताकि उसकी शारीरिक और मानसिक शुद्धता बनी रहे। इस संस्कार का उद्देश्य शिशु को प्रकृति से जोड़ना है और उसे स्वस्थ वातावरण में पलने का अवसर देना है। यह संस्कार शिशु की सुरक्षा और दीर्घायु की कामना करता है। निष्क्रमण संस्कार में शिशु को ताजगी और सुखद अनुभवों के साथ बाहरी दुनिया का पहला परिचय मिलता है। इस संस्कार के द्वारा परिवार और समाज शिशु को जीवन की वास्तविकता से जोड़ते हैं, ताकि वह भविष्य में अच्छे कार्यों की ओर बढ़े। यह संस्कार शिशु के जीवन में एक महत्वपूर्ण मील का पत्थर होता है।

6. नामकरण (Namkaran)

नामकरण संस्कार शिशु के जीवन का एक महत्वपूर्ण और पवित्र संस्कार होता है, जिसमें उसे एक शुभ और उत्तम नाम दिया जाता है। नामकरण संस्कार का उद्देश्य शिशु को एक पहचान देना होता है, ताकि वह समाज में अपने अस्तित्व का एहसास कर सके। इस संस्कार में माता-पिता शिशु के लिए एक ऐसा नाम चुनते हैं, जो उसकी क़िस्मत, पवित्रता और भविष्य को दर्शाता हो। नामकरण संस्कार आमतौर पर शिशु के जन्म के पहले महीने में किया जाता है। इसमें परिवार और रिश्तेदार शिशु के नाम के चयन में भाग लेते हैं। यह संस्कार शिशु के जीवन में एक नई शुरुआत और एक जिम्मेदारी का प्रतीक होता है। नामकरण के दौरान विशेष मंत्रों का उच्चारण किया जाता है, जो शिशु के भविष्य के लिए शुभ और साकारात्मक होते हैं। इस संस्कार से शिशु को धर्म, संस्कृति और समाज के प्रति जिम्मेदारी का बोध होता है। साथ ही, यह संस्कार उसे अपने परिवार और समाज के प्रति निष्ठा और समर्पण की भावना देता है।

7. अन्नप्राशन (Annaprashan)

अन्नप्राशन संस्कार शिशु के जीवन का एक महत्वपूर्ण संस्कार होता है, जिसमें शिशु को पहली बार ठोस आहार दिया जाता है। यह संस्कार शिशु के जीवन के एक नए चरण की शुरुआत का प्रतीक होता है, जब वह केवल दूध के बजाय अन्य आहार को ग्रहण करना शुरू करता है। अन्नप्राशन संस्कार आमतौर पर शिशु के छह महीने की उम्र के आस-पास किया जाता है। इस संस्कार का उद्देश्य शिशु के शारीरिक विकास को प्रोत्साहित करना और उसे ठोस आहार से परिचित कराना होता है। इसे शिशु की जीवन शक्ति और ऊर्जा को बढ़ाने के रूप में देखा जाता है। इस संस्कार के दौरान शिशु को खीर, चिउड़े या किसी हल्के आहार का पहला कौर दिया जाता है। परिवार और समाज शिशु को आशीर्वाद और शुभकामनाएँ देते हैं ताकि वह अच्छे स्वास्थ्य के साथ जीवन जी सके। अन्नप्राशन संस्कार से शिशु के जीवन में खुशी और समृद्धि का माहौल बनता है, और यह संस्कार परिवार के अन्य सदस्य के साथ जुड़ाव को भी बढ़ाता है।

8. चूड़ाकर्म (Chudakarma)

चूड़ाकर्म संस्कार शिशु के जीवन का एक महत्वपूर्ण और पारंपरिक संस्कार होता है, जिसमें शिशु के सिर के बालों को पहली बार कटवाया जाता है। इसे 'मुंडन' भी कहा जाता है। यह संस्कार शिशु के जीवन में शुद्धि और नए जीवन की शुरुआत का प्रतीक होता है। चूड़ाकर्म संस्कार आमतौर पर शिशु के पहले वर्ष में किया जाता है। इस संस्कार के दौरान शिशु के सिर के बालों को धार्मिक तरीके से काटा जाता है, और इसके साथ ही परिवार और समाज की शुभकामनाएँ शिशु को दी जाती हैं। यह संस्कार शिशु की शारीरिक शुद्धता को दर्शाता है और उसे सकारात्मक ऊर्जा का आशीर्वाद प्रदान करता है। चूड़ाकर्म संस्कार को भारतीय संस्कृति में बहुत शुभ और पुण्यकारी माना जाता है। इसे शिशु के जीवन में नई ऊर्जा, स्वास्थ्य और समृद्धि का प्रतीक माना जाता है। यह संस्कार शिशु के लिए एक नए जीवन की शुरुआत और उसके जीवन की सफलता का प्रतीक बनता है।

9. कर्णवेध (Karnavedh)

कर्णवेध संस्कार में शिशु के कान छिदवाए जाते हैं, जो विशेष रूप से लड़कियों के लिए किया जाता है। यह संस्कार आमतौर पर शिशु के छह महीने या उससे अधिक की उम्र में

किया जाता है। कर्णवेध संस्कार का उद्देश्य शिशु के शरीर को शुद्ध और सजाने का होता है। इसे सौंदर्य, धार्मिकता और सामाजिक जिम्मेदारी से जोड़ा जाता है। कान छिदवाने से न केवल शिशु के शारीरिक रूप में एक सुंदरता आती है, बल्कि यह एक धार्मिक कार्य भी माना जाता है, क्योंकि इससे शिशु को भगवान की कृपा प्राप्त होती है। यह संस्कार शिशु को समाज में पहचान दिलाने का कार्य करता है और उसे सामाजिक और धार्मिक समुदाय का हिस्सा बनाने में मदद करता है। इस संस्कार में विशेष मंत्रों का उच्चारण किया जाता है, और शिशु के कानों में धागा या झुमका पहनाया जाता है। कर्णवेध संस्कार को धार्मिक दृष्टि से बहुत महत्वपूर्ण माना जाता है, क्योंकि इसे संतान के लिए शुभ और आशीर्वादपूर्ण माना जाता है।

10. उपनयन (Upanayan)

उपनयन संस्कार भारतीय संस्कृति में अत्यधिक महत्व रखता है, और इसे 'जनेऊ संस्कार' भी कहा जाता है। यह संस्कार विशेष रूप से ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य वर्ग के लड़कों के लिए होता है। उपनयन संस्कार का उद्देश्य बालक को शिक्षा और धार्मिक कर्तव्यों के प्रति जागरूक करना है। इसे आमतौर पर 7 से 16 वर्ष की आयु में किया जाता है। इस संस्कार में बालक को गुरु के पास भेजने से पहले जनेऊ पहनाया जाता है, जो उसकी धार्मिक जिम्मेदारियों का प्रतीक होता है। यह संस्कार बालक के जीवन के महत्वपूर्ण मोड़ को दर्शाता है, जब वह शारीरिक और मानसिक रूप से शिक्षित होने के लिए तैयार होता है। उपनयन संस्कार को ज्ञान की शुरुआत और बालक के जीवन में आध्यात्मिक यात्रा की शुरुआत के रूप में देखा जाता है। यह संस्कार शिक्षा, संस्कार और धर्म के प्रति बालक को जागरूक करता है और उसे अपनी जिम्मेदारियों को निभाने के लिए प्रेरित करता है।

11. वेदारंभ (Vedarambh)

वेदारंभ संस्कार उपनयन संस्कार के बाद किया जाता है और इसका उद्देश्य बालक को वेदों और धार्मिक ग्रंथों का अध्ययन शुरू करने के लिए प्रेरित करना है। यह संस्कार शिक्षार्थी जीवन की शुरुआत को दर्शाता है, जिसमें बालक को गुरु से धर्म, वेद और शास्त्रों का अध्ययन करना सिखाया जाता है। वेदों का अध्ययन भारतीय संस्कृति में सर्वोच्च धार्मिक कर्तव्य माना जाता है। वेदारंभ संस्कार का मुख्य उद्देश्य बालक के जीवन में धर्म का महत्व स्थापित करना और उसे धर्म, संस्कृति और संस्कारों से जोड़ना है। इस संस्कार में विशेष मंत्रों का उच्चारण किया जाता है, जो बालक के जीवन में ज्ञान और

सफलता लाने के लिए होते हैं। वेदारंभ संस्कार में बालक को उपनयन संस्कार के बाद पहले शास्त्रों का अध्ययन आरंभ करने के लिए प्रेरित किया जाता है, ताकि वह जीवन में सफलता प्राप्त कर सके और समाज में अपने कर्तव्यों को ठीक से निभा सके। यह संस्कार बालक को सही मार्ग पर चलने और उच्च आदर्शों को अपनाने के लिए प्रेरित करता है।

12. समावर्तन (Samavartan)

समावर्तन संस्कार का उद्देश्य बालक को घर लौटने और गृहस्थ जीवन में लौटने के लिए प्रेरित करना होता है। यह संस्कार तब किया जाता है जब बालक अपनी शिक्षा पूरी कर लेता है। यह संस्कार शिक्षा के समापन का प्रतीक होता है और यह जीवन के एक नए चरण की शुरुआत को दर्शाता है। समावर्तन संस्कार में बालक अपने गुरु और शिक्षा से विदाई लेता है और फिर गृहस्थ जीवन की ओर लौटता है। यह संस्कार पारंपरिक रूप से शिक्षा की समाप्ति और जीवन के कर्तव्यों के प्रति जागरूकता का प्रतीक है। समावर्तन संस्कार के दौरान बालक को विशेष आशीर्वाद और अच्छे कार्यों की प्रेरणा दी जाती है, ताकि वह अपने जीवन में सफलता प्राप्त कर सके और अपने समाज में आदर्श नागरिक बने। यह संस्कार शिक्षा और जीवन की सही दिशा के बीच संबंध को स्पष्ट करता है और व्यक्ति को अपने धर्म, संस्कार और कर्तव्यों का पालन करने के लिए प्रेरित करता है।

13. विवाह (Vivah)

विवाह संस्कार भारतीय संस्कृति का एक महत्वपूर्ण संस्कार है, जो जीवन के सबसे महत्वपूर्ण और पवित्र कर्तव्यों में से एक माना जाता है। विवाह दो व्यक्तियों के बीच एक धार्मिक और सामाजिक बंधन की शुरुआत होती है, जिसमें वे एक-दूसरे के साथ अपना जीवन व्यतीत करने का संकल्प लेते हैं। यह संस्कार केवल शारीरिक संबंधों का प्रारंभ नहीं होता, बल्कि यह दो व्यक्तियों के जीवन को एक-दूसरे से जोड़ता है और उन्हें समाज के प्रति अपने कर्तव्यों को समझने और निभाने के लिए प्रेरित करता है। विवाह संस्कार में दोनों पक्षों के परिवार, रिश्तेदार और समाज के लोग एकत्रित होते हैं, और इस आयोजन के दौरान विभिन्न धार्मिक अनुष्ठान किए जाते हैं। विवाह संस्कार को भारतीय संस्कृति में बहुत पवित्र माना जाता है, क्योंकि इसे जीवन के उद्देश्य, कर्तव्यों और समाज के प्रति जिम्मेदारियों का प्रतिबिंब माना जाता है। विवाह से व्यक्ति को प्रेम, समर्पण और समाज में एक महत्वपूर्ण भूमिका निभाने की शिक्षा मिलती है।

Bharat Samvahak : Values Through Time

14. वानप्रस्थ (Vanaprastha)

वानप्रस्थ संस्कार व्यक्ति के जीवन का एक अहम मोड़ होता है, जब वह गृहस्थ जीवन से निवृत्त होकर तपस्वी और धार्मिक जीवन की ओर बढ़ता है। यह संस्कार व्यक्ति के तीसरे जीवन चरण की शुरुआत का प्रतीक होता है, जब वह अपने परिवार और सांसारिक बंधनों से मुक्त होकर ध्यान और साधना की ओर अग्रसर होता है। वानप्रस्थ संस्कार में व्यक्ति अपने गृहस्थ कर्तव्यों से संन्यास लेकर मानसिक शांति और आत्मा की शुद्धि के लिए वन में जाता है। इसे आत्मा के शुद्धिकरण और जीवन के अंतिम उद्देश्य की प्राप्ति का कदम माना जाता है। इस संस्कार के माध्यम से व्यक्ति संसारिकता से ऊपर उठता है और अपने अंतिम लक्ष्य, मोक्ष की ओर अग्रसर होता है। वानप्रस्थ संस्कार व्यक्ति को अपने जीवन के उद्देश्य और कर्तव्यों पर पुनर्विचार करने का अवसर देता है, ताकि वह आत्म-साक्षात्कार और वास्तविक शांति की प्राप्ति कर सके। यह संस्कार जीवन के ज्ञान और अंतिम मुक्ति की दिशा में एक महत्वपूर्ण कदम है।

15. संन्यास (Sannyas)

संन्यास संस्कार जीवन के अंतिम चरण का प्रतीक होता है, जब व्यक्ति अपने सांसारिक बंधनों से पूरी तरह मुक्त होकर केवल आत्मा की शांति और मोक्ष की ओर अग्रसर होता है। संन्यास संस्कार के दौरान व्यक्ति सभी सांसारिक इच्छाओं और भोगों से निवृत्त होकर एक तपस्वी जीवन जीने का संकल्प लेता है। यह संस्कार व्यक्ति के जीवन के उद्देश्य की गहरी समझ का परिणाम होता है। संन्यास संस्कार को भारतीय संस्कृति में जीवन की अंतिम यात्रा के रूप में देखा जाता है, जहां व्यक्ति केवल आत्मा की शांति और परमात्मा के साथ एकता की प्राप्ति के लिए ध्यान और साधना करता है। इस संस्कार के द्वारा व्यक्ति अपने शरीर, मन और आत्मा को शुद्ध करने की दिशा में कदम बढ़ाता है। संन्यास संस्कार को आत्मसाक्षात्कार और मोक्ष की ओर एक महत्वपूर्ण कदम के रूप में माना जाता है, जहां व्यक्ति संसार की सभी बंधनाओं से मुक्त हो जाता है।

16. अन्त्येष्टि (Antyeshti)

अन्त्येष्टि संस्कार मृत्यु के बाद किया जाता है, जिसमें व्यक्ति के शरीर का अंतिम संस्कार किया जाता है। यह संस्कार मृत्यु के बाद की प्रक्रिया का हिस्सा होता है, और इसका उद्देश्य व्यक्ति की आत्मा को शांति देना और उसे अगले जन्म की यात्रा के लिए तैयार

करना होता है। अन्त्येष्टि संस्कार के दौरान मृतक के शरीर को धोकर उसे पवित्र किया जाता है और फिर उसे अग्नि में समर्पित किया जाता है। इस संस्कार में मृतक के परिवार और रिश्तेदार उसे श्रद्धांजलि अर्पित करते हैं और उसकी आत्मा की शांति के लिए प्रार्थना करते हैं। यह संस्कार जीवन के अंत और अगले जीवन के शुरू होने का प्रतीक होता है। अन्त्येष्टि संस्कार को भारतीय संस्कृति में एक महत्वपूर्ण धार्मिक अनुष्ठान माना जाता है, जो व्यक्ति के जीवन के अंतिम यात्रा का हिस्सा होता है। इसके माध्यम से व्यक्ति को शांति और मुक्ति की प्राप्ति होती है।

लोक और वर्ण व्यवस्था: भारतीय समाज की परंपरागत संरचना

भारतीय समाज की सामाजिक संरचना प्राचीन काल से ही विविधताओं और जटिलताओं से भरी रही है। भारतीय समाज में समाजिक समानता, जिम्मेदारियाँ और अधिकारों का वितरण बहुत व्यवस्थित था, जिसका आधार था **वर्ण व्यवस्था** और **लोक व्यवस्था**। ये दोनों व्यवस्थाएँ भारतीय समाज के विकास और उसकी संस्कृति को आकार देने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाती हैं।

1. वर्ण व्यवस्था (Varna Vyavastha)

प्राचीन भारत में वर्ण व्यवस्था को समाज के संगठन के लिए एक समरस और कार्यक्षम ढाँचे के रूप में कल्पित किया गया था। यह वेदों की परंपरा में निहित थी और अपने मूल स्वरूप में जन्म या वंश पर आधारित नहीं थी, बल्कि **गुण** (स्वभाविक गुणों), **कर्म** (किये गए कार्यों) और **स्वभाव** (प्राकृतिक प्रवृत्ति) पर आधारित थी। जब इसे अपने इसी मूल संदर्भ में समझा जाता है, तो यह व्यवस्था एक संतुलित समाज की रचना का उद्देश्य रखती थी, जिसमें प्रत्येक व्यक्ति की भूमिका समाज के सामूहिक कल्याण में सार्थक योगदान देने वाली होती थी। इस व्यवस्था के अनुसार समाज को चार प्रमुख वर्गों में विभाजित किया गया था– **ब्राह्मण**, **क्षत्रिय**, **वैश्य** और **शूद्र**।

ब्राह्मण (Brahman): ब्राह्मण समाज का सबसे उच्च वर्ग था। उनका मुख्य कार्य धर्म, शिक्षा और ज्ञान की प्राप्ति और प्रसार था। वे वेदों के ज्ञाता होते थे और समाज में धार्मिक अनुष्ठान, यज्ञ और पूजा-पाठ का आयोजन करते थे। ब्राह्मणों को समाज में सम्मान की दृष्टि से देखा जाता था और वे सामाजिक और धार्मिक निर्णय लेने में प्रमुख भूमिका निभाते थे।

क्षत्रिय (Kshatriya): क्षत्रिय वर्ग समाज के शासक और योद्धा थे। उनका मुख्य कार्य रक्षा करना, राज्य का शासन चलाना और युद्धों में भाग लेना था। वे शासन व्यवस्था और समाज की सुरक्षा के लिए जिम्मेदार थे। वे युद्ध में कुशल और शासकीय कार्यों में माहिर होते थे। इस वर्ग में राजा और सेनापति आते थे, जो समाज की भलाई के लिए लड़ाई करते थे और न्याय व्यवस्था की स्थापना करते थे।

वैश्य (Vaishya): वैश्य वर्ग समाज के व्यापारी, कृषक और उद्योगपति होते थे। उनका कार्य कृषि, व्यापार, व्यवसाय और धन संचय था। वे आर्थिक गतिविधियों में शामिल होते थे और समाज के लिए धन का संचार करते थे। वैश्य वर्ग ने कृषि, उद्योग और व्यापार को प्रोत्साहित किया और समाज की आर्थिक स्थिति को मजबूत किया।

शूद्र (Shudra): उन्होंने कुशल श्रम, शिल्पकला और सहायक सेवाओं के माध्यम से सेवा प्रदान की। ये सामान्यतः शारीरिक श्रम से जुड़े कार्यों में संलग्न रहते थे, जैसे — कृषि, निर्माण कार्य, वस्त्र निर्माण और घरेलू सेवा।

वर्ण व्यवस्था का उद्देश्य

वर्ण व्यवस्था का मुख्य उद्देश्य था कि समाज में प्रत्येक व्यक्ति अपनी प्राकृतिक प्रवृत्तियों और योग्यताओं के अनुसार अपना कार्य करे और समाज के विकास में योगदान दे।

इसका आदर्श था कि प्रत्येक वर्ग अपने कर्तव्यों को निभाते हुए समाज के हित में काम करता है। हालांकि, समय के साथ यह व्यवस्था जटिल और कठोर हो गई, जिससे कई सामाजिक असमानताएँ और असंतोष उत्पन्न हुए।

2. लोक व्यवस्था (Lok Vyavastha)

लोक व्यवस्था भारतीय समाज में एक ऐसी प्रणाली थी, जिसमें समाज के विभिन्न पहलुओं को समानता, न्याय और सामूहिक कल्याण के सिद्धांत पर आधारित किया गया था। लोक व्यवस्था का संबंध समाज के सामान्य लोगों से था, जिनका कार्य परंपरागत समाज संरचना के अनुसार था।

प्राचीन भारतीय न्याय व्यवस्था

प्राचीन भारत ने मानव इतिहास में सबसे व्यापक और नैतिक न्याय प्रणालियों में से एक का विकास किया। आधुनिक अदालतों और लिखित कानूनों के अस्तित्व में आने से बहुत पहले ही भारतीय विचारकों और शासकों ने एक ऐसी न्यायिक व्यवस्था की रचना कर ली थी, जिसकी जड़ें **धर्म** में थीं—एक ऐसा सिद्धांत जो क़ानून, नैतिकता, कर्तव्य और धर्म को एक सूत्र में पिरोता था। यह प्रणाली केवल दंड देने का माध्यम नहीं थी, बल्कि यह एक ऐसा मार्गदर्शक थी, जो व्यक्ति और समाज के जीवन में संतुलन बनाए रखने का प्रयास करती थी।

प्राचीन भारत में न्याय का आधार **धर्म** था। आज के जैसे कठोर और स्थायी कानूनों की जगह धर्म ने जीवन में उचित आचरण और नैतिकता को महत्त्व दिया। यह नियम स्थिर नहीं थे, बल्कि व्यक्ति की उम्र, व्यवसाय, सामाजिक स्थिति और परिस्थिति के अनुसार बदलते थे। धर्म का पालन केवल आम नागरिकों से ही नहीं, बल्कि राजा, न्यायाधीश और आध्यात्मिक गुरुओं से भी अपेक्षित था।

प्राचीन भारतीय कानून के स्रोत

आधुनिक काल की तरह प्राचीन भारतीय कानून किसी विधान सभा द्वारा बनाए गए नहीं थे। इसके बजाय, न्याय व्यवस्था चार प्रमुख स्रोतों पर आधारित थी:

- **श्रुति** – वेद जैसे पवित्र ग्रंथ, जिन्हें दिव्य ज्ञान माना जाता था और जो सर्वोच्च अधिकार रखते थे।
- **स्मृति** – मनुस्मृति, याज्ञवल्क्य स्मृति जैसे ग्रंथ, जिनमें नागरिक, आपराधिक और पारिवारिक मामलों से संबंधित विस्तृत नियम दिए गए थे।

- **आचार (परंपरा)** – समाज में प्रचलित परंपराएँ और रीति-रिवाज़, जो लंबे समय से स्वीकार्य रहे थे।
- **राजाज्ञा (राजनीति)** – जिन मामलों में शास्त्र स्पष्ट मार्गदर्शन नहीं देते थे, वहाँ राजा को आवश्यकता और न्याय के आधार पर निर्णय लेने का अधिकार था।

इन ग्रंथीय, पारंपरिक और व्यवहारिक स्रोतों के संतुलन ने न्याय व्यवस्था को समय के साथ-साथ विकसित होने की क्षमता दी।

न्याय प्रणाली की संरचना

प्राचीन भारत की न्याय व्यवस्था को कई स्तरों पर संगठित किया गया था–

A. राजदरबार (राजा की अदालत)

राजा को न्याय का मुख्य रक्षक माना जाता था। उसे विद्वानों, मंत्रियों और धर्मगुरुओं की सलाह मिलती थी। गंभीर और राजनीतिक मामलों में स्वयं राजा न्यायाधीश की भूमिका निभाता था, लेकिन उससे अपेक्षा की जाती थी कि वह व्यक्तिगत भावनाओं के स्थान पर धर्म के अनुसार निर्णय ले।

B. ग्राम और स्थानीय अदालतें

अधिकांश विवाद स्थानीय स्तर पर निपटाए जाते थे। गाँवों में **पंचायतें** होती थीं, जो बुज़ुर्गों की परिषद के रूप में कार्य करती थीं और गाँववासियों के बीच विवाद सुलझाती थीं। इसी तरह व्यापारी संघ (श्रेणियाँ) और अन्य व्यवसायिक समूहों की भी अपनी आंतरिक न्याय प्रणाली होती थी।

C. नियुक्त न्यायाधीश

बड़े नगरों या मौर्य और गुप्त जैसे राजवंशों के शासनकाल में राजा **धर्माधिकरण** या **व्यवहारपति** जैसे न्यायाधीश नियुक्त करता था। ये न्यायाधीश धार्मिक ग्रंथों के ज्ञाता और ईमानदार माने जाते थे।

न्यायिक प्रक्रिया

प्राचीन भारतीय न्याय प्रक्रिया निष्पक्ष, गहन और नैतिक रूप से उचित मानी जाती थी। प्रमुख प्रक्रियाएँ निम्न थीं:

- **शिकायत दर्ज करना** – मुक़दमे की शुरुआत वादी द्वारा एक औपचारिक बयान देने से होती थी।

- **उत्तर देना (प्रतिवादी का पक्ष)** – आरोपी को अपना पक्ष रखने का पूरा अधिकार होता था।
- **साक्ष्य और गवाह (साक्षी)** – गवाहों की भूमिका अत्यंत महत्वपूर्ण होती थी। झूठे गवाह को कड़ा दंड दिया जाता था।
- **शपथ और अग्नि परीक्षा** – यदि ठोस साक्ष्य उपलब्ध न हो तो अभियुक्त से शपथ ली जाती थी या अग्निपरीक्षा जैसे उपाय अपनाए जाते थे।
- **विचारणा (न्यायिक जांच)** – न्यायाधीश तथ्य परखते, दोनों पक्षों से प्रश्न करते और शास्त्रों का परामर्श लेकर निर्णय लेते थे।

दंड की प्रकृति

दंड का उद्देश्य केवल कष्ट देना नहीं, बल्कि समाज में संतुलन को पुनर्स्थापित करना था। दंड के प्रकार थे:

- **जुर्माना (दंड)** – नागरिक मामलों और छोटे अपराधों के लिए सामान्य दंड।
- **क्षतिपूर्ति (प्रतिपूर्ति)** – अपराधी को हुए नुकसान की भरपाई करनी होती थी।
- **निर्वासन या सामाजिक बहिष्कार** – गंभीर नैतिक अपराधों के मामलों में उपयोग किया जाता था।
- **शारीरिक दंड** – यह दुर्लभ था और आमतौर पर प्रतीकात्मक रूप में होता था।

दंड तय करते समय अपराध की भावना और पीड़ित व अपराधी की सामाजिक स्थिति का ध्यान रखा जाता था।

प्राचीन भारत की न्यायिक परंपराएँ आगे चलकर मौर्य, गुप्त और अन्य राजवंशों में विकसित हुई। सम्राट **अशोक** जैसे शासकों ने न्याय और करुणा के सिद्धांतों को अपने शिलालेखों के माध्यम से प्रचारित किया। मुगल और ब्रिटिश काल में भी गाँव स्तर पर पंचायतों और परंपराओं की भूमिका बनी रही। आज का **पंचायती राज तंत्र** उसी प्राचीन लोक-न्याय प्रणाली की आधुनिक प्रतिध्वनि है। प्राचीन भारत की न्यायिक प्रणाली केवल क़ानूनों और दंडों का समूह नहीं थी, बल्कि यह एक **जीवनशैली** थी, जो नैतिकता, कर्तव्य और सामाजिक समरसता पर आधारित थी। इसका उद्देश्य केवल अपराधों की सज़ा देना नहीं, बल्कि समाज में सत्य, न्याय और करुणा के माध्यम से संतुलन बनाए रखना था। आज की आधुनिक अदालतें और क़ानून व्यवस्था उससे भिन्न हैं, फिर भी प्राचीन भारत की यह परंपरा न्याय को एक **पवित्र कर्तव्य** और सामाजिक कल्याण का माध्यम मानने की प्रेरणा देती है।

- **राजा का स्थान और कार्य:** राजा लोक व्यवस्था का सबसे बड़ा प्रतीक था। राजा को धर्म का पालन करने वाला, न्यायप्रिय और प्रजाजन की भलाई में निष्ठावान माना जाता था। वह अपने राज्य के शासक होने के नाते अपने प्रजाओं की सुरक्षा, कल्याण और समृद्धि के लिए कार्य करता था। राजा का कर्तव्य था कि वह समाज में किसी भी प्रकार के अन्याय को समाप्त करे और धर्म की रक्षा करे।
- **व्यक्तिगत कर्तव्यों का पालन:** लोक व्यवस्था में प्रत्येक व्यक्ति को अपने कर्तव्यों का पालन करने की महत्वपूर्ण जिम्मेदारी दी गई थी। यह व्यवस्था बहुत ही आदर्शवादी थी, जो प्रत्येक व्यक्ति से यह अपेक्षाएँ करती थी कि वह अपने कार्यों से समाज के कल्याण में योगदान दे। प्रत्येक व्यक्ति को अपने कार्यों का चयन अपनी योग्यताओं और जन्म के आधार पर करना होता था, ताकि वह समाज में सबसे अच्छा कार्य कर सके।
- **लोक और राज्य का संबंध:** लोक व्यवस्था और राज्य की व्यवस्था के बीच एक गहरा संबंध था। प्राचीन भारत में राज्य की स्थिरता और न्याय का पालन करने के लिए लोक व्यवस्था महत्वपूर्ण थी। समाज की कई समस्याओं का हल राज्य और लोक के सहयोग से ही संभव था। उदाहरण के लिए, एक राजा को अपने राज्य में शांति और सुरक्षा बनाए रखने के लिए लोक से सहमति प्राप्त करनी होती थी, और लोक को भी यह अपेक्षित था कि वह राजा के आदेशों का पालन करें।

3. वर्ण और लोक व्यवस्था का संबंध

वर्ण व्यवस्था और लोक व्यवस्था दोनों का ही उद्देश्य समाज के प्रत्येक सदस्य को उसकी भूमिका निभाने के लिए प्रेरित करना था। इन दोनों व्यवस्थाओं में एक सामूहिक दृष्टिकोण था, जिसमें हर व्यक्ति का कार्य समाज की भलाई के लिए था। हालांकि, समय के साथ वर्ण व्यवस्था में असमानता और जातिवाद के तत्व विकसित हुए, जिससे समाज में विभाजन और असंतोष बढ़ा।

वर्ण व्यवस्था के तहत, लोग अपनी जन्मजात स्थिति के अनुसार कार्य करते थे, जबकि लोक व्यवस्था समाज में सामूहिक कार्यों और कर्तव्यों के पालन पर आधारित थी। इस प्रकार, दोनों व्यवस्थाएँ समाज के संगठन और संरचना को बनाने के लिए थी, परंतु इन्हें समय के साथ आलोचनाएँ भी मिलीं, खासकर जब जातिवाद और असमानता ने समाज में गहरी जड़ें जमा लीं।

4. समाज में बदलाव और वर्तमान परिपेक्ष्य

समाज में वर्ण और लोक व्यवस्था के सिद्धांत समय के साथ बदलावों का शिकार हुए। विभिन्न सामाजिक सुधारकों ने इन व्यवस्था की आलोचना की और समानता और सामाजिक न्याय की वकालत की। महात्मा गांधी, डॉ. भीमराव अंबेडकर जैसे नेताओं ने समाज में समता लाने के लिए विशेष प्रयास किए। वर्तमान में भारतीय संविधान ने जातिवाद और वर्ण व्यवस्था को समाप्त करने के लिए कई प्रावधान किए हैं, जिससे समाज में समानता और न्याय सुनिश्चित हो सके। हालाँकि, वर्ण व्यवस्था का प्रभाव आज भी कुछ हद तक भारतीय समाज में देखने को मिलता है, परंतु समय के साथ बदलाव आया है और लोग अब एक समान समाज की दिशा में काम कर रहे हैं।

5. वर्ण व्यवस्था और जाति व्यवस्था के बीच अंतर

वर्ण व्यवस्था और **जाति व्यवस्था** में कुछ महत्वपूर्ण अंतर हैं, जिनके कारण दोनों की संरचना और प्रभाव अलग-अलग होते हैं:

सिद्धांत बनाम व्यवहार

- **वर्ण व्यवस्था** एक आदर्श सिद्धांत था, जो वेदों और धार्मिक ग्रंथों में वर्णित था। यह समाज को चार वर्गों में बांटने का एक विचार था, जो जीवन के उद्देश्य और कार्यों के बीच संतुलन स्थापित करने के लिए था।
- **जाति व्यवस्था** एक व्यावहारिक और जन्म आधारित व्यवस्था थी, जो समय के साथ समाज में घुल-मिल गई और जटिल हो गई। जातियाँ केवल कार्यों तक सीमित नहीं थीं, बल्कि जाति के आधार पर विवाह, खानपान और सामाजिक संबंधों पर भी कड़े प्रतिबंध थे।

पारदर्शिता

- **वर्ण व्यवस्था** में चार वर्ग स्पष्ट थे (ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र), जिनके कर्तव्य और कार्य विभाजित थे। हालांकि, यह आदर्श सिद्धांत था, इसका समय के साथ पालन और व्यावहारिकता में भिन्नता आई।
- **जाति व्यवस्था** अधिक जटिल और अस्पष्ट थी। इसमें कई उप-जातियाँ (जैसे ब्राह्मणों के भीतर विभिन्न उपजातियाँ, शूद्रों के भीतर भी कई जातियाँ) थीं और इनकी पहचान और स्थान विशेष स्थानों और समुदायों में भिन्न होते थे। जातियों के बीच रिश्ते और भेदभाव कठोर थे, और यह व्यवस्था आम जनता के लिए कठिन थी।

अंतरगत असमानता

- **वर्ण व्यवस्था** का उद्देश्य कार्यों का विभाजन करना था और समाज में सामूहिक रूप से धर्म और कर्तव्यों के पालन के लिए था। इसमें उच्च और निम्न वर्ग के बीच कोई स्पष्ट असमानता नहीं थी।
- **जाति व्यवस्था** में जन्म आधारित भेदभाव था और समाज के विभिन्न वर्गों के बीच असमानता और भेदभाव था। उच्च जातियों को अधिक अधिकार, सम्मान और सुख-सुविधाएँ मिलती थीं, जबकि निम्न जातियों को कई प्रतिबंधों और कष्टों का सामना करना पड़ता था।

7. समाज में जाति और वर्ण व्यवस्था का प्रभाव

वर्ण व्यवस्था और **जाति व्यवस्था** ने भारतीय समाज में लंबे समय तक अपने प्रभाव को बनाए रखा। यह व्यवस्था कई बार सामाजिक असमानता और भेदभाव को जन्म देती रही। हालांकि, **महात्मा गांधी** और **डॉ. भीमराव अंबेडकर** जैसे महान नेताओं ने इन दोनों व्यवस्थाओं की आलोचना की और समाज में समानता की दिशा में कई कदम उठाए।

आज, **भारतीय संविधान** ने जातिवाद और वर्ण व्यवस्था को समाप्त करने का प्रयास किया है, और भारतीय समाज में समानता और सामाजिक न्याय सुनिश्चित करने के लिए कई विधिक प्रावधान किए गए हैं। तथापि, जाति व्यवस्था का प्रभाव कुछ हद तक अभी भी भारतीय समाज में देखा जाता है, विशेषकर ग्रामीण क्षेत्रों में।

लोक-राष्ट्र का सिद्धांत प्राचीन भारत में

प्राचीन भारतीय समाज में लोक-राष्ट्र की अवधारणा एक महत्वपूर्ण स्थान रखती है, जो समाज की सामूहिक भलाई, समानता और जनहित पर आधारित थी। यह सिद्धांत भारतीय राजनीति और समाज के बीच गहरे रिश्ते को दर्शाता था, जहां शासन और सत्ता का मुख्य स्रोत जनता (लोक) होती थी। प्राचीन भारतीय चिंतन में यह माना जाता था कि राष्ट्र की शक्ति और समृद्धि जनता के कल्याण और उनकी सहभागिता पर निर्भर करती

है। लोक-राष्ट्र का सिद्धांत केवल शासन की व्यवस्था से संबंधित नहीं था, बल्कि यह सामाजिक, धार्मिक और सांस्कृतिक दृष्टिकोण से भी जुड़ा हुआ था। इसमें यह विचार किया गया कि प्रत्येक व्यक्ति का धर्म और कर्तव्य समाज और राष्ट्र की समृद्धि में योगदान देने के लिए होना चाहिए।

प्राचीन भारत में "लोक" का अर्थ सिर्फ जनसमूह से नहीं था, बल्कि यह समाज के धर्म, नैतिकता और संस्कृति के बोध को भी व्यक्त करता था। लोक-राष्ट्र के सिद्धांत के अनुसार, समाज का प्रत्येक सदस्य अपने धार्मिक और सामाजिक कर्तव्यों को निभाते हुए राष्ट्र के कल्याण में भागीदार बनता था। समाज का सही संचालन और कल्याण तभी संभव था जब हर व्यक्ति अपने धर्म का पालन करता हो और समाज की हर क्रिया से जुड़ा होता हो। वेदों, उपनिषदों और शास्त्रों में यह स्पष्ट किया गया है कि आदर्श समाज का निर्माण केवल तभी संभव है जब प्रत्येक व्यक्ति अपने कर्तव्यों का पालन करे और समाज के अन्य सदस्यों के साथ सामूहिक रूप से अच्छे कार्य करे। यह सामूहिकता और साझेदारी ही लोक-राष्ट्र की परिभाषा का एक प्रमुख पहलू था।

राजनीतिक दृष्टिकोण से लोक-राष्ट्र का सिद्धांत शासक की भूमिका पर भी प्रकाश डालता है। इस सिद्धांत के अनुसार शासक या राजा की सत्ता जनता से ही प्राप्त होती थी और वह अपने प्रजा के कल्याण के लिए जिम्मेदार था। राजा को लोक का प्रतिनिधि माना जाता था और उसे यह जिम्मेदारी दी जाती थी कि वह राज्य में न्याय, समानता और धर्म का पालन करे। अगर शासक अपने कर्तव्यों में विफल होता, तो उसे प्रजा द्वारा उत्तरदायी ठहराया जा सकता था। प्राचीन भारतीय राजनीति में लोक-राष्ट्र का यह सिद्धांत राजा और प्रजा के बीच एक प्रकार का समझौता था, जिसमें राजा अपने शासन के माध्यम से जनकल्याण सुनिश्चित करने का दायित्व निभाता था।

लोक-राष्ट्र का सिद्धांत प्राचीन भारतीय समाज में न्याय और समानता पर भी आधारित था। इसमें समाज के प्रत्येक वर्ग को समान अधिकार प्राप्त थे, और कोई भी व्यक्ति अपने जन्म, जाति या स्थिति के आधार पर भेदभाव का शिकार नहीं होता था। राजा का कर्तव्य था कि वह अपने राज्य में समानता बनाए रखे और समाज के हर व्यक्ति को उचित अवसर प्रदान करे। इस प्रकार, लोक-राष्ट्र का सिद्धांत समाज के भीतर भेदभाव को समाप्त करने और सबके लिए एक समान जीवन जीने की अवधारणा को बढ़ावा देता था। यह सिद्धांत प्राचीन भारत में लोकतांत्रिक संस्थाओं के अस्तित्व की पुष्टि भी करता था, क्योंकि राज्य में निर्णय लेने की प्रक्रिया में समाज के सभी वर्गों की भागीदारी महत्वपूर्ण मानी जाती थी।

लोक-राष्ट्र का विचार प्राचीन भारत में एक आदर्श शासन की परिकल्पना थी, जिसमें न्याय, समानता और लोक कल्याण को प्राथमिकता दी जाती थी। शासक को धर्म का पालन करते हुए जनता की भलाई के लिए कार्य करना होता था, और राज्य की नीतियाँ और कृतियाँ जनहित में होती थीं। यह सिद्धांत समाज में आपसी सहयोग और सहभागिता को बढ़ावा देता था, जिससे राष्ट्र की समृद्धि और शक्ति सुनिश्चित होती थी। प्राचीन भारतीय समाज में लोक-राष्ट्र का यह सिद्धांत एक आदर्श शासन व्यवस्था को प्रस्तुत करता था, जो सामाजिक और राजनीतिक रूप से संतुलित था और जिसमें प्रत्येक व्यक्ति के अधिकारों और कर्तव्यों का समान सम्मान था। इस प्रकार, लोक-राष्ट्र का सिद्धांत प्राचीन भारतीय समाज में एक स्वस्थ, न्यायपूर्ण और समान समाज की नींव रखता था। यह सिद्धांत आज भी भारतीय राजनीति और समाज में प्रासंगिक है, क्योंकि यह हमें यह सिखाता है कि एक सफल और समृद्ध राष्ट्र वही है, जहाँ जनता का कल्याण सर्वोपरि हो और शासन के हर कदम में उनके हित का ध्यान रखा जाए।

अनुशंसित पठन सामग्री

1. G.S. Ghurye, *Caste and Race in India*, Popular Prakashan, 1932 (multiple reprints).
2. André Béteille, *Caste, Class and Power: Changing Patterns of Stratification in a Tanjore Village*, Oxford University Press, 1965.
3. B. Mahadevan, V.R. Bhat, Nagendra Pawan R.N. (2022), "Introduction to Indian Knowledge System", PHI learning private ltd.
4. M.N. Srinivas, *Social Change in* Modern *India*, Orient BlackSwan, 1966.
5. Dipankar Gupta, *Interrogating Caste: Understanding Hierarchy and Difference in Indian Society*, Penguin India, 2000.
6. Surinder S. Jodhka, *Caste in Contemporary India*, Routledge India, 2012.
7. B.R. Ambedkar, *Annihilation of Caste*, Navayana Publishing (Annotated Critical Edition by Arundhati Roy), 2014.
8. Louis Dumont, *Homo Hierarchicus: The Caste System and Its Implications*, University of Chicago Press, 1970.
9. Nandini Sundar, *Subalterns and Sovereigns: An Anthropological History of Bastar (1854–1996)*, Oxford University Press, 1997.
10. OP Pandey (2023), "Bharat Vaibhav", National Book Trust, India.
11. Veena Das, *Critical Events: An Anthropological Perspective on Contemporary India*, Oxford University Press, 1995.
12. Rajni Kothari (ed.), *Caste in Indian Politics*, Orient BlackSwan, 1970.

बहु विकल्पीय प्रश्न

1. भारतीय दर्शन के अनुसार, मानव को श्रेष्ठ बनाने वाला तत्व क्या है?

   a) शारीरिक शक्ति

   b) धन संचय

   c) मानसिक और आध्यात्मिक क्षमताएँ

   d) तकनीकी प्रगति

2. महाभारत के शांति पर्व (299/20) में कहा गया है–

   a) जानवर दिव्य प्राणी हैं

   b) मानव से श्रेष्ठ कुछ नहीं है

   c) आत्मा नश्वर है

   d) ज्ञान गौण है

3. ऋषि अरविन्द मानव को किस शब्द से संबोधित करते हैं?

   a) भोगयोनि

   b) कर्मयोगी

   c) सचेतन प्राणी

   d) पशु सरीखे प्राणी

4. भारतीय दर्शन में "कर्मयोनि" का तात्पर्य है–

   a) भोग करना

   b) पुनर्जन्म

   c) कर्म प्रधान प्राणी

   d) संसाधनों का उपभोग करने वाला

5. भारतीय चिंतन में मानव को पशु से अलग करने वाला गुण क्या है?
   a) आक्रामकता
   b) प्रवृत्ति
   c) विवेक और आत्म-नियंत्रण
   d) शिकार

6. भारतीय संस्कृति में परिवार का आधार क्या है?
   a) कानूनी अनुबंध
   b) राजनीतिक स्थिति
   c) भावनात्मक संबंध
   d) आर्थिक निर्भरता

7. भारतीय समाज में माता-पिता मुख्यतः होते हैं–
   a) अधिकार के प्रतीक
   b) सरकारी प्रतिनिधि
   c) भावनात्मक संबंध
   d) अनुशासनकर्ता

8. भारतीय परिवार व्यवस्था में व्यक्ति की पहचान का क्या होता है?
   a) वह उन्नत होती है
   b) वह अपरिवर्तित रहती है
   c) वह संबंधों की भूमिकाओं में बदल जाती है
   d) वह खो जाती है

9. पाश्चात्य दृष्टिकोण में परिवार को देखा जाता है–
   a) एक पवित्र विश्वास के रूप में
   b) एक धार्मिक इकाई के रूप में
   c) एक कानूनी संस्था के रूप में
   d) एक ग्राम संस्था के रूप में

10. भारतीय संस्कृति में किस प्रकार की पहचान में परिवर्तन को बल दिया गया है?
   a) राजनीतिक पहचान
   b) व्यावसायिक पहचान
   c) भावनात्मक और सामाजिक पहचान
   d) तकनीकी पहचान

11. भारतीय विश्वास के अनुसार, प्रारंभिक मानव जीवन आधारित था–
   a) युद्ध और विजय
   b) विज्ञान
   c) धर्म और नैतिकता
   d) प्रवृत्ति

12. पाश्चात्य विकासवादी दृष्टिकोण में मानव को देखा जाता है–
   a) प्रारंभ से ही सजग प्राणी के रूप में
   b) आध्यात्मिक रूप से विकसित जीव के रूप में
   c) विकसित पशु के रूप में
   d) दिव्य प्राणी के रूप में

13. रिया टेन्हिल की "हिस्ट्री ऑफ फूड" प्रारंभिक मानव विकास को किससे जोड़ती है?
   a) तकनीकी आविष्कार
   b) धार्मिक प्रथाएँ
   c) जलवायु परिवर्तन और खाद्य उपलब्धता
   d) युद्ध

14. भारतीय विचारधारा बल देती है–
   a) प्रकृति पर प्रभुत्व जमाने पर
   b) प्रकृति को त्यागने पर
   c) प्रकृति के साथ सामंजस्य पर
   d) प्रकृति की उपेक्षा करने पर

15. यूरोपीय विचारधारा मानव को मानती है–
a) आत्मवान प्राणी
b) संसाधन
c) धर्म-प्रेरित
d) पर्यावरण-मित्र

16. परंपरागत रूप से कितने मुख्य संस्कार माने जाते हैं?
a) 8
b) 12
c) 16
d) 24

17. गर्भाधान संस्कार कब किया जाता है?
a) जन्म के बाद
b) गर्भाधान से पूर्व
c) नामकरण के समय
d) मृत्यु पर

18. कौन सा संस्कार भ्रूण की सुरक्षा पर केंद्रित होता है?
a) जातकर्म
b) पुंसवन
c) अन्नप्राशन
d) सीमन्तोन्नयन

19. सीमन्तोन्नयन का उद्देश्य है–
a) बच्चे का नामकरण
b) प्रसव की तैयारी
c) बच्चे का स्वागत
d) बच्चे को ठोस आहार देना

20. जातकर्म संस्कार चिह्नित करता है–
a) मुंडन समारोह
b) नामकरण संस्कार
c) जन्म और शुद्धिकरण
d) ठोस आहार देना

21. निष्क्रमण संस्कार में बच्चे को परिचित कराया जाता है–
a) धार्मिक शिक्षा से
b) परिवार के बुज़ुर्गों से
c) बाह्य वातावरण से
d) सामाजिक रीति-रिवाज़ों से

22. नामकरण संस्कार को कहते हैं–
a) अन्नप्राशन
b) जातकर्म
c) नामकरण
d) उपनयन

23. किस संस्कार में बच्चे को पहली बार ठोस आहार दिया जाता है?
a) अन्नप्राशन
b) चूड़ाकर्म
c) समावर्तन
d) निष्क्रमण

24. मुंडन संस्कार को और क्या कहते हैं?
a) कर्णवेध
b) चूड़ाकर्म
c) नामकरण
d) पुंसवन

25. कर्ण छेदन संस्कार को कहते हैं–

a) चूड़ाकर्म

b) जातकर्म

c) कर्णवेध

d) सीमन्तोन्नयन

26. उपनयन संस्कार का अर्थ है–

a) अंतिम संस्कार

b) वैदिक शिक्षा की शुरुआत

c) मुंडन

d) नामकरण

27. उपनयन में पहनाई जाने वाली पवित्र डोरी को कहते हैं–

a) रुद्राक्ष

b) तिलक

c) जनेऊ

d) माला

28. वेदारंभ संस्कार दर्शाता है–

a) जीवन का अंत

b) ब्रह्मचर्य जीवन की शुरुआत

c) शिक्षा की पूर्णता

d) विवाह जीवन की शुरुआत

29. समावर्तन संस्कार दर्शाता है–

a) नामकरण

b) गुरुकुल से वापसी

c) मुंडन

d) संतान का जन्म

30. भारतीय संस्कृति में विवाह को माना जाता है–

a) एक व्यापारिक अनुबंध

b) एक पवित्र सामाजिक बंधन

c) एक निजी निर्णय

d) एक दंड

31. वानप्रस्थ दर्शाता है–

a) विवाह

b) जन्म

c) आध्यात्मिक जीवन की ओर गमन / संन्यास की तैयारी

d) शिक्षा की शुरुआत

32. संन्यास का तात्पर्य है–

a) राजनीति में प्रवेश

b) सांसारिक बंधनों का त्याग

c) सैन्य सेवा

d) घर निर्माण

33. मृत्यु के बाद किया जाने वाला अंतिम संस्कार है–

a) संन्यास

b) समावर्तन

c) अन्त्येष्टि

d) उपनयन

34. भारतीय वर्ण व्यवस्था में कितने वर्णों का उल्लेख है?

a) 2

b) 3

c) 4

d) 5

35. ब्राह्मणों की मुख्य जिम्मेदारी थी–
a) व्यापार
b) कृषि
c) धार्मिक और शैक्षिक कार्य
d) युद्ध

36. क्षत्रियों का मुख्य कर्तव्य था–
a) शिक्षा देना
b) व्यापार करना
c) सुरक्षा और शासन
d) ग्रंथ लेखन

37. वैश्य किस कार्य में लगे होते थे–
a) शिक्षा
b) संन्यास
c) कृषि और व्यापार
d) श्रम कार्य

38. शूद्र किससे संबंधित थे?
a) पूजा
b) सैन्य सेवा
c) श्रम और सेवा
d) शिक्षा

39. वर्ण व्यवस्था का मूल उद्देश्य था–
a) राजनीतिक नियंत्रण
b) धन का विभाजन
c) स्वभाव और क्षमता के अनुसार कर्तव्यों का निर्धारण
d) शिक्षा को सीमित करना

40. यज्ञ और अनुष्ठान कौन-सा वर्ण करता था?
a) वैश्य
b) शूद्र
c) क्षत्रिय
d) ब्राह्मण

41. लोक व्यवस्था आधारित थी–
a) नस्लीय श्रेष्ठता पर
b) पूंजी संचय पर
c) समानता और न्याय पर
d) युद्ध पर

42. प्राचीन भारत में ग्राम स्तर की न्यायिक व्यवस्था थी–
a) राज्यसभा
b) लोकसभा
c) ग्राम पंचायत
d) उच्च न्यायालय

43. लोक व्यवस्था में राजा से अपेक्षा की जाती थी कि वह पालन करे–
a) लोकप्रियता
b) धर्म
c) बाजार के नियम
d) पूंजीवादी विचार

44. लोक व्यवस्था में व्यक्ति से अपेक्षा की जाती थी कि वह–
a) विदेशी शासकों की आज्ञा माने
b) कार्य से बचें
c) अपने सामाजिक कर्तव्यों का पालन करें
d) धन इकट्ठा करें

45. लोक व्यवस्था में न्याय की प्रमुख जिम्मेदारी थी–
   a) संसद
   b) विदेशी लोग
   c) पंचायत
   d) मंदिर

46. वर्ण व्यवस्था अधिक–
   a) व्यावहारिक
   b) आर्थिक
   c) सैद्धांतिक रूप से आदर्शवादी
   d) अस्थायी

47. लोक व्यवस्था केंद्रित थी–
   a) व्यक्तिगत संपत्ति पर
   b) निजी अनुष्ठानों पर
   c) सामूहिक जिम्मेदारी पर
   d) अलगाव पर

48. समय के साथ वर्ण व्यवस्था बन गई–
   a) एक वैश्विक धर्म
   b) एक लचीला मॉडल
   c) एक कठोर जाति व्यवस्था
   d) एक लोकतांत्रिक प्रणाली

49. एक मुख्य अंतर यह है कि वर्ण व्यवस्था–
   a) शुरू से ही जन्म-आधारित थी
   b) कर्म और स्वभाव पर आधारित थी
   c) यूरोपीय लोगों द्वारा बनाई गई थी
   d) एक जनजातीय शासन थी

50. लोक व्यवस्था ने प्रभावित किया–
   a) केवल व्यापार
   b) यूरोपीय विज्ञान
   c) ग्रामीण और राज्य प्रशासन
   d) केवल विवाह संबंध

51. जाति व्यवस्था मुख्यतः आधारित है–
   a) राजनीतिक संबंधों पर
   b) धन पर
   c) जन्म पर
   d) आध्यात्मिक उपलब्धि पर

52. जाति और वर्ण में क्या अंतर है ?
   a) जाति एक लचीला मॉडल था
   b) वर्ण का कोई शास्त्रीय आधार नहीं था
   c) जाति कठोर और भेदभावपूर्ण बन गई
   d) कोई अंतर नहीं है

53. अस्पृश्यता जुड़ी थी–
   a) ब्राह्मणों से
   b) क्षत्रियों से
   c) दलितों से
   d) वैश्य से

54. जाति व्यवस्था बनाई गई थी–
   a) समानता के लिए
   b) एकता के लिए
   c) सामाजिक भेदभाव के लिए
   d) कल्याण के लिए

55. जाति व्यवस्था में किसी व्यक्ति की जाति निर्धारित होती थी–

a) योग्यता से
b) पारिवारिक मूल्यों से
c) जन्म से
d) शिक्षा से

56. जाति व्यवस्था का कड़ा विरोध किसने किया?

a) ऋषि अरविंद
b) स्वामी दयानंद
c) महात्मा गांधी
d) मनु

57. डॉ. भीमराव अंबेडकर ने समर्थन किया–

a) वैदिक वर्ण में लौटने का
b) समानता और सामाजिक न्याय का
c) ब्रिटिश शासन का
d) अस्पृश्यता का

58. भारतीय संविधान किसे समाप्त करने का लक्ष्य रखता है?

a) धार्मिक अनुष्ठानों को
b) आध्यात्मिक शिक्षा को
c) जाति-आधारित भेदभाव को
d) पंचायत प्रणाली को

59. संवैधानिक प्रयासों के बावजूद, जाति का प्रभाव अभी भी दिखता है–

a) केवल शहरी क्षेत्रों में
b) वैश्विक स्तर पर
c) ग्रामीण क्षेत्रों में
d) केवल सरकार में

60. आधुनिक भारतीय समाज अग्रसर है–

a) वर्ण आधारित समाज की ओर
b) पूर्ण राजतंत्र की ओर
c) सामाजिक समानता की ओर
d) पश्चिमी जीवनशैली की ओर

61. लोक-राष्ट्र आधारित है–

a) जातीय श्रेष्ठता पर
b) व्यक्तिगत महत्वाकांक्षा पर
c) सामूहिक कल्याण पर
d) व्यापारिक सिद्धांतों पर

62. लोक-राष्ट्र सिद्धांत के अनुसार शक्ति आती है–

a) हथियारों से
b) राजा की इच्छा से
c) लोगों (लोक) से
d) धन से

63. लोक-राष्ट्र में प्रत्येक व्यक्ति योगदान करता है–

a) समाज से बचकर
b) व्यक्तिवाद के द्वारा
c) धर्म के पालन से
d) राजनीतिक शक्ति द्वारा

64. लोक-राष्ट्र में शासक होता है–

a) कंपनियों द्वारा निर्वाचित
b) दिव्य
c) जनता का प्रतिनिधि
d) अचूक

65. लोक-राष्ट्र का एक प्रमुख तत्व है–

a) तानाशाही

b) वंशानुगत अधिकार

c) न्याय और समानता

d) व्यक्तिगत लाभ

66. कौन-सा संस्कार आध्यात्मिक शिक्षा की शुरुआत से जुड़ा है?

a) समावर्तन

b) वेदारंभ

c) अन्नप्राशन

d) कर्णवेध

67. वेदों में "मनुर्भव" का अर्थ है–

a) दिव्य बनो

b) पशु बनो

c) मानव बनो

d) अदृश्य बनो

68. भारतीय संस्कारों का मुख्य उद्देश्य है–

a) कानूनी प्रशिक्षण

b) मनोरंजन

c) आत्मशुद्धि और उत्तरदायित्व

d) शारीरिक सुख

69. कौन-सी व्यवस्था स्थानीय सामूहिक शासन पर अधिक बल देती है?

a) वर्ण व्यवस्था

b) पश्चिमी राजतंत्र

c) लोक व्यवस्था

d) सामंती व्यवस्था

70. भारतीय दर्शन में अंतिम मुक्ति को क्या कहा जाता है?

a) विवाह

b) मोक्ष

c) जनेऊ

d) जन्म

71. भारतीय दृष्टिकोण में "मानवता" को परिभाषित करता है–

a) शारीरिक शक्ति

b) तकनीकी प्रगति

c) मानसिक नियंत्रण और उत्तरदायित्व

d) धन और प्रसिद्धि

72. भारतीय विचार के अनुसार अन्य जीव कहलाते हैं–

a) देवयोनि

b) कर्मयोनि

c) भोगयोनि

d) संन्यासी

73. भारतीय दर्शन में मनुष्य और पशु प्रवृत्तियों का मुख्य अंतर क्या है?

a) पशु अधिक बुद्धिमान होते हैं

b) मनुष्य में नैतिक नियंत्रण होता है

c) पशु भविष्य की योजना बनाते हैं

d) मनुष्य में भावनाएँ नहीं होतीं

74. भारतीय दर्शन जीवन के लक्ष्य को मानता है–

a) धन अर्जन

b) व्यक्तिगत महत्वाकांक्षा

c) आत्म-बोध

d) तकनीकी प्रगति

75. पाठ के अनुसार, भारतीय परंपरा में गर्भाधान को माना जाता है–
a) एक संयोग मात्र
b) निजी मामला
c) एक पवित्र और आध्यात्मिक घटना
d) एक कानूनी अनुबंध

76. भारतीय पारिवारिक मूल्यों में मातृत्व और पितृत्व आधारित होते हैं–
a) अनुबंध आधारित भूमिकाओं पर
b) आनुवंशिक प्रभुत्व पर
c) भावनात्मक संबंधों पर
d) सरकारी नियमों पर

77. भारतीय परिवार की एक अनोखी विशेषता है–
a) भूमिका में विशेषज्ञता
b) भावनाओं का संबंधी पहचान में रूपांतरण
c) निर्धारित आर्थिक जिम्मेदारियाँ
d) कानूनी औपचारिकताएँ

78. भारतीय और पश्चिमी परिवारों में एक मुख्य अंतर–
a) भारत में अधिक कानून हैं
b) व्यक्तिगत स्वतंत्रता
c) भावनात्मक जुड़ाव बनाम कानूनी ढांचा
d) धार्मिक विविधता

79. भारतीय पारिवारिक प्रणाली मनुष्य को ऊपर उठाने में सहायक है–
a) अन्य जीवों से ऊपर
b) राजत्व की ओर
c) योद्धा की स्थिति तक
d) आर्थिक शक्ति की ओर

80. भारतीय संस्कृति में विवाह को माना जाता है–
a) एक अस्थायी संबंध
b) एक पवित्र मिलन और कर्तव्य
c) एक कानूनी विवाद
d) एक राजनीतिक साधन

81. भारत में जातीय भेदभाव का कानूनी विरोध किस दस्तावेज़ में किया गया है?
a) वेद
b) भारतीय संविधान
c) अर्थशास्त्र
d) भगवद गीता

82. जाति व्यवस्था ने जन्म दिया–
a) समान शिक्षा को
b) वैज्ञानिक प्रगति को
c) भेदभाव और अस्पृश्यता को
d) सभी के लिए आर्थिक विकास को

83. डॉ. आंबेडकर का आंदोलन केंद्रित था–
a) व्यापार सुधारों पर
b) आध्यात्मिक विरक्ति पर
c) सामाजिक समानता और अधिकारों पर
d) विदेशी गठबंधनों पर

84. महात्मा गांधी ने "हरिजन" शब्द किसके लिए प्रयोग किया?
a) ब्राह्मणों के लिए
b) संतों के लिए
c) दलितों के लिए
d) व्यापारियों के लिए

85. आधुनिक भारत के सामाजिक सुधारकों का उद्देश्य था–
a) वर्ण व्यवस्था को सुदृढ़ करना b) राजतंत्र की रक्षा करना
c) समानता को बढ़ावा देना d) अस्पृश्यता का समर्थन करना

86. यूरोपीय विचारधारा में मनुष्य को मुख्यतः माना गया–
a) एक दिव्य आत्मा b) एक चेतन प्राणी
c) एक संसाधन d) एक नैतिक मार्गदर्शक

87. भारतीय दर्शन मनुष्य को किससे जोड़कर देखता है?
a) कानून और राज्य से b) विज्ञान और तर्क से
c) आत्मा और धर्म से d) तकनीकी विकास से

88. भारतीय विचारधारा समरसता लाती है–
a) शक्ति और राजनीति में b) प्रकृति और मानव आवश्यकताओं में
c) जाति और धन में d) राज्य और हिंसा में

89. पश्चिमी विकास सिद्धांत के अनुसार मनुष्य का उद्भव–
a) नैतिक रूप से उन्नत प्राणी से हुआ b) दिव्य जन्म से हुआ
c) वानरों से हुआ d) पुनर्जन्म से हुआ

90. भारतीय विकास की धारणा ज़ोर देती है–
a) विजय पर b) पर्यावरण विनाश पर
c) संतुलन और सामंजस्य पर d) शोषण पर

91. लोक-राष्ट्र का सिद्धांत जोड़ता है–
a) लोगों और विज्ञान को b) समाज और सेना को
c) लोगों और शासन को d) राज्य और अलगाव को

92. लोक-राष्ट्र में राजा की भूमिका होती है–
a) भूमि जीतना b) धन एकत्र करना
c) जनता की सेवा करना d) व्यापार का विस्तार करना

93. लोक-राष्ट्र में सामूहिक चेतना में शामिल हैं–
a) व्यापार और श्रम b) युद्ध और शांति
c) धर्म, नैतिकता और संस्कृति d) हथियार और रक्षा

94. जनकल्याण की अवधारणा आधारित है–
a) लाभ कमाने पर b) राजनीतिक प्रतिस्पर्धा पर
c) धर्म और सामाजिक उत्तरदायित्व पर d) तकनीकी नवाचार पर

95. प्राचीन भारतीय ग्रंथ जो लोक-राष्ट्र का समर्थन करते हैं–
a) संविधान b) वेद और उपनिषद
c) कम्युनिस्ट घोषणापत्र d) व्यापार अधिनियम

96. भारतीय सामाजिक प्रणाली के अनुसार एक सफल राष्ट्र वह है जो–
a) दूसरों को जीत ले b) जाति को बनाए रखे
c) जन कल्याण को प्राथमिकता दे d) क्षेत्र का विस्तार करे

97. संस्कारों (रीतियों) का उद्देश्य है–
a) व्यक्ति को धनवान बनाना b) व्यक्ति को नियमों में बांधना
c) जीवन के हर चरण में व्यक्ति को शुद्ध और उन्नत बनाना
d) धार्मिक लोगों को दूसरों से अलग करना

98. भारतीय शिक्षा की शुरुआत मानी जाती है–
a) वेदारंभ से b) विवाह से
c) अन्नप्राशन से d) अंत्येष्टि से

99. आश्रम व्यवस्था में विद्यार्थी जीवन के बाद कौन सा चरण आता है?
a) संन्यास b) गृहस्थ
c) ब्रह्मचर्य d) वानप्रस्थ

100. भारतीय जीवन-दर्शन का अंतिम लक्ष्य है–
a) युद्ध में विजय b) सामाजिक प्रसिद्धि
c) मोक्ष (मुक्ति) d) व्यावसायिक सफलता

उत्तर-दर्शिका

Q.	Ans.	Q.	Ans.	Q.	Ans.	Q.	Ans.
1	c	26	b	51	c	76	c
2	b	27	c	52	c	77	b
3	c	28	b	53	c	78	c
4	c	29	b	54	c	79	a
5	c	30	b	55	c	80	b
6	c	31	c	56	c	81	b
7	c	32	b	57	b	82	c
8	c	33	c	58	c	83	c
9	c	34	c	59	c	84	c
10	c	35	c	60	c	85	c
11	c	36	c	61	c	86	c
12	c	37	c	62	c	87	c
13	c	38	c	63	c	88	b
14	c	39	c	64	c	89	c
15	b	40	d	65	c	90	c
16	c	41	c	66	b	91	c
17	b	42	c	67	c	92	c
18	b	43	b	68	c	93	c
19	b	44	c	69	c	94	c
20	c	45	c	70	b	95	b
21	c	46	c	71	c	96	c
22	c	47	c	72	c	97	c
23	a	48	c	73	b	98	a
24	b	49	b	74	c	99	b
25	c	50	c	75	c	100	c

About Book :

'*भारतीय लोकशासन परंपरा*' प्राचीन भारत में समाज की संरचना, मूल्यों और विकास की एक गहन और संतुलित पड़ताल प्रस्तुत करती है। वेदों, स्मृतियों, धर्मशास्त्रों, महाकाव्यों और प्रारंभिक ऐतिहासिक स्रोतों के आधार पर यह पुस्तक यह समझाने का प्रयास करती है कि दार्शनिक आदर्शों, सांस्कृतिक परंपराओं और ब्रह्मांडीय व्यवस्था की भावना ने उस समय की सामाजिक संरचना को किस प्रकार आकार दिया।

आधुनिक दृष्टिकोण से अतीत की आलोचना करने के बजाय, यह पुस्तक यह जानने का प्रयास करती है कि वर्ण, आश्रम, धर्म, और सामाजिक कर्तव्य जैसे सिद्धांतों की मूल भावना क्या थी और ये सिद्धांत व्यक्ति तथा समाज के जीवन को किस तरह प्रभावित करते थे। यह पुस्तक न केवल इन आदर्शों की चर्चा करती है, बल्कि उस प्रणाली की व्यावहारिक जटिलताओं और समय के साथ हुए परिवर्तनों को भी समाहित करती है।

छात्रों, शोधकर्ताओं और जिज्ञासु पाठकों के लिए उपयुक्त यह कृति इतिहास की गहराई को वर्तमान संदर्भ से जोड़ती है। यह रूढ़ छवियों से परे जाकर विचारशील विश्लेषण और भारत की समृद्ध सांस्कृतिक विरासत के साथ सम्मानजनक संवाद को प्रेरित करती है। यह पुस्तक पाठकों को उस संतुलन, उत्तरदायित्व और सामाजिक नैतिकता की मूल भावना को फिर से खोजने का निमंत्रण देती है, जिसने एक समय में विश्व की सबसे स्थायी सभ्यताओं में से एक को दिशा दी थी।

विद्या भारती उच्च शिक्षा संस्थान
Vidya Bharati Uchcha Shiksha Sansthan
H-107a, Sector-12, Noida,
Gautam Buddha Nagar, U.P. 201301
Contact Us : 0120-4338616, 9999694251

किताबवाले
7/31, अंसारी रोड, दरियागंज
नई दिल्ली–110002
वेबसाईट : *www.kitabwale.com*
ईमेल : *kitabwale@gmail.com*

ISBN 978-93-49531-80-2
9 789349 531802